पद्मनंदि-पंचविंशति:

अध्याय 2 – "दानोपदेशम्"

प्रवचन

गणाचार्य श्री १०८ विरागसागर जी महाराज

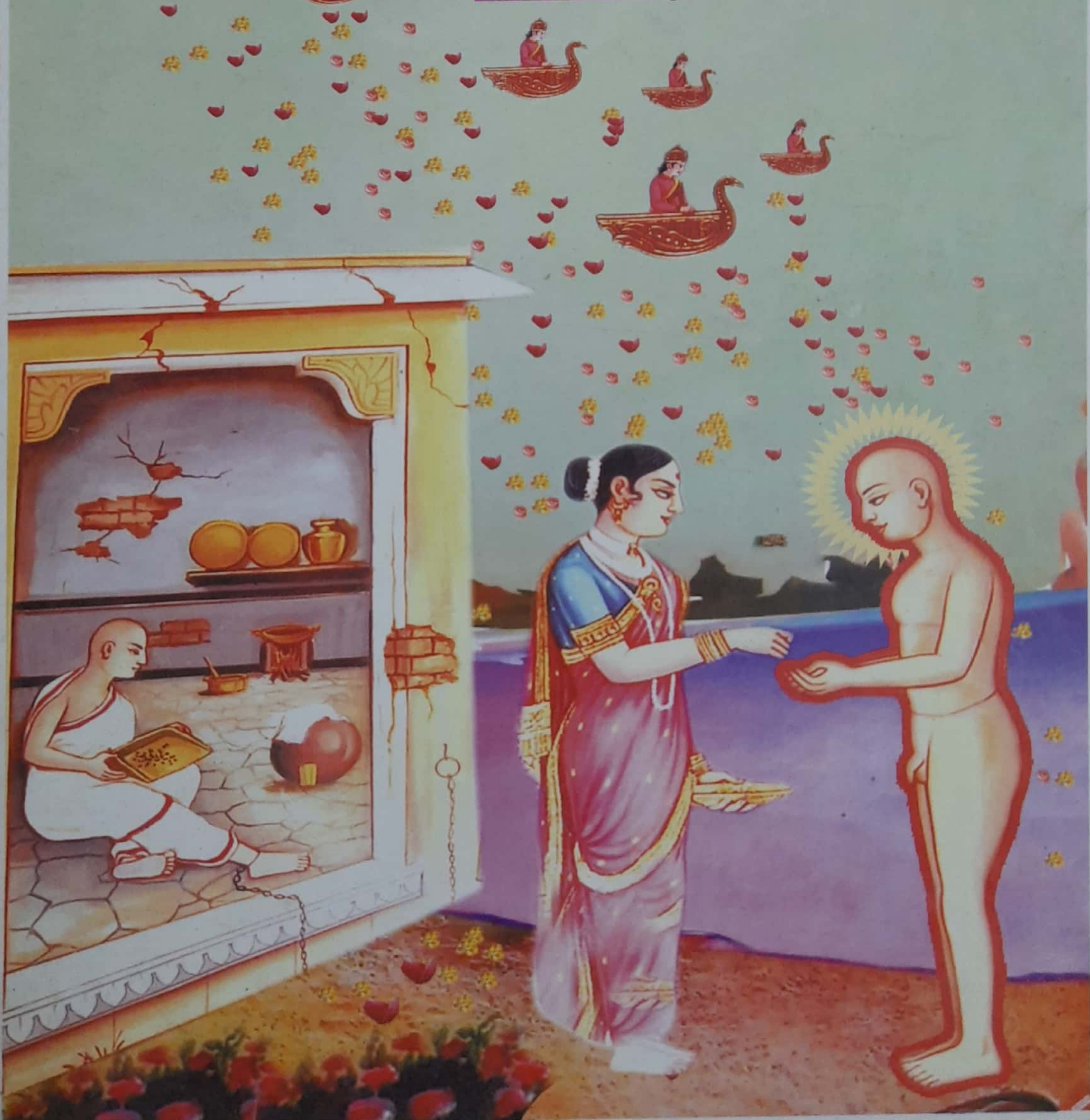

Scanned with CamScanner

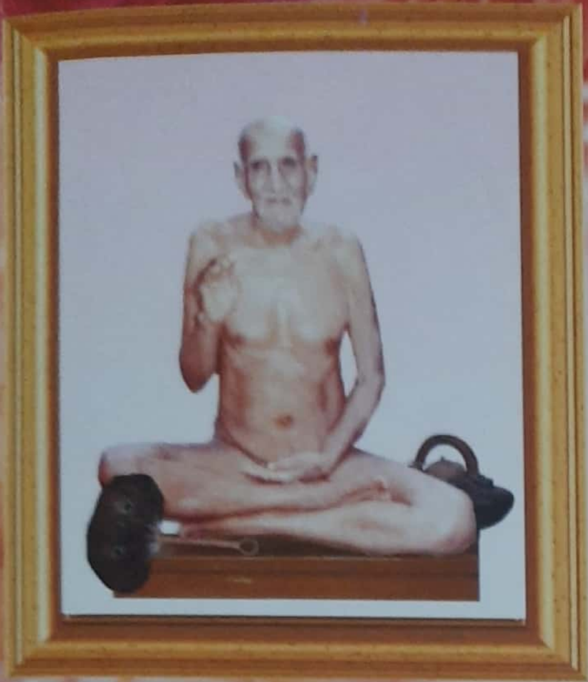

प.पू. आचार्य श्री १०८ विमल सागरजी महाराज

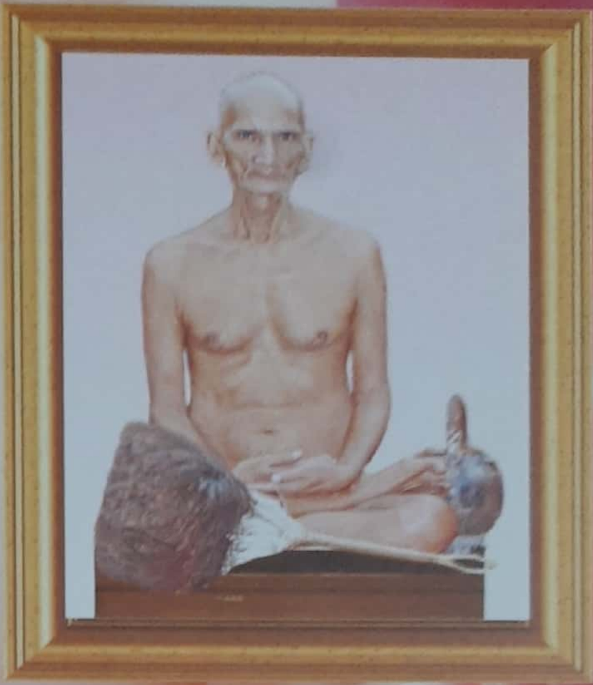

प.पू. आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी महाराज

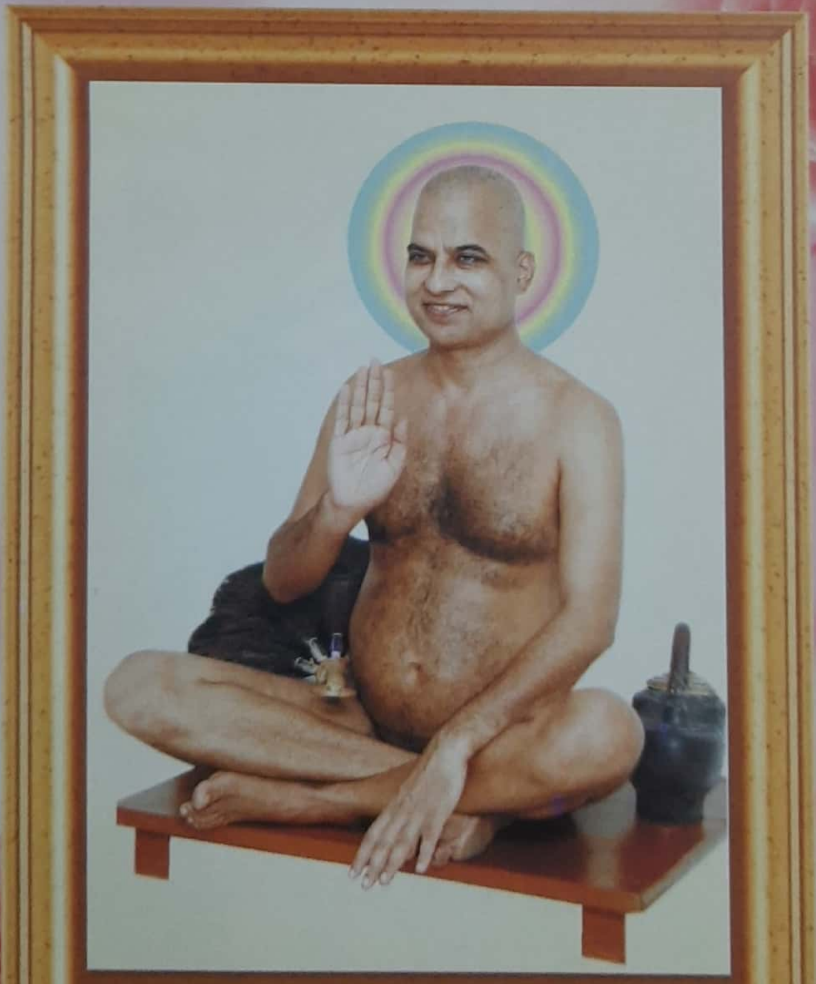

प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागरजी महाराज

Scanned with CamScanner

-: कृति :-

पद्मनंदि पञ्चविंशतिः
अध्याय-२ "दानोपदेशम्"

-: प्रवचन :-

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

-: सम्पादन :-

पूज्य आर्यिका विशिष्ट श्री माताजी

-: संकलन :-

पूज्य आर्यिका विवक्षा श्री माता जी

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्या पीठ,

बताशा बाजार भिण्ड(म.प्र.)

Scanned with CamScanner

प्रसंग	-	प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज की स्वर्णिम जन्म जयंति के पावन प्रसंग पर - २०१०, केशरिया जी अतिशय क्षेत्र (राज.)
कृति	-	**पद्मनंदी पंचविंशति: अधिकार-२ "दानोपदेश"**
प्रवचन	-	परम पूज्य गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज
प्रवचन स्थल	-	तलोद (गुज.), २००९
सम्पादन	-	पूज्य आर्यिका विशिष्ट श्री माताजी
संकलन	-	आर्यिका विदक्षा श्री माताजी
संस्करण	-	(I), लुहारियां (राज.) २०१०, १००० प्रतियाँ
पुण्यार्जक	-	श्री बिपीनकुमार कान्तिलाल शाह परिवार - तलोद (गुजरात)
मूल्य	-	५० रु.

प्रकाशक/प्राप्ति स्थल- श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ,
बताशा बाजार, भिण्ड(म.प्र.)

मुद्रक - नरेशभाई बी. शाह
पद्मावती प्रिन्टींग प्रेस, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-१३.
फोन : (079) 27550268 मो : 9227215492

Scanned with CamScanner

२१वीं सदी के ज्योतिपुंज:- गणाचार्य विराग सागर जी

डॉ. के.एल. जैन, प्राचार्य
शासकीय कन्या महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपरिमित प्रज्ञा के धनी- 'संत' वह है जिसकी सरलता का कोई अंत न हो। जो संसार से विरक्त होकर स्व-पर कल्याण की भावना में निरत हो, जिसके अन्त: करण में वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत् प्रवाहमान हो। जिसकी वाणी से जन-जन के कल्याण की कामना के भाव निसृत हो, जिन्होंने ज्ञान की अतुल गहराईयों में उतरकर सृजन के मौलिक स्वरूप को गढ़ा हो। ऐसे अनेक विशेषणों से विभूषित प्रज्ञा के धनी आचार्य विराग सागर जी का इस धारत्री पर अवतरण इस सदी की एक अन्यतम घटना ही मानी जायेगी।

असाधारण व्यक्तित्व के धारक-एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें जादूई तिलस्म का आकर्षण हो, यह आकर्षण है उनके त्याग का साधना का, तप का, चर्या का और उस असाधारण ज्ञान का जिसके कारण श्रावक दीवानगी की हदों को भी पार कर जाता है। आपकी सौम्य मुद्रा के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है। आपके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्तकमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता है। यही वजह है कि आचार्य विराग सागर जी जहाँ से निकल पड़ते हैं वहाँ के लोग उनके हमेशा-हमेशा के लिए बन जाते है।

अनोखे बचपन का विरल सम्मोहन-दमोह (म.प्र.) जिले के पथरिया ग्राम में पाषाणों के बीच इस हीरे का अवतरण २ मई १९६३ (वैशाख शुक्ल वि.सं. २०२०) को रात्रि ९ बजे हुआ। पुण्यात्मा ब्र. श्री कपूरचंद जी एवं जननी श्रीमती श्यामादेवी (आपसे ही दीक्षित एवं समाधिस्थ आर्यिका पूज्य श्री विशान्तश्री माता जी) की कोख से एक ऐसा कमल (अरविन्द) खिला जिसमें अपनी अनुपम सुगन्धी से सारे बुन्देलखण्ड को महका दिया। कभी-कभी आगत की आश्चर्य चकित करने वाली घटनाएँ वर्तमान में ही अपना संकेत देने लगती है। कुछ ऐसा ही हुआ बालक अरविन्द के साथ, जब वे बचपन में नग्न अवस्था में खड़े होकर हाथ में झाडू लेकर (पिच्छी का प्रतीक) माँ से बोले-मुनिराज का पड़गाहन करो। क्योंकि कुछ दिन पूर्व उन्होंने इस तरह के दृश्य को देखा था। उक्त दृश्य का आत्म पटल पर अंकन आज आचार्य विराग सागर जी के रूप में परिलक्षित हो रहा है। यह इस धरित्री का पुण्य उदय ही माना जाएगा।

बालक अरविन्द की बाल्य अवस्था की क्रियाएँ सम्मोहने की सीमाएँ लाँघने में समर्थ थीं, सेवा कार्य के हद दर्जे की दीवानगी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसी भावना के कारण बालक अरविन्द सभी को सम्मोहित कर लेते थे। संवेदनशीलता की भावना ने उन्हें प्राणी मात्र की कल्याण कामना से आपूरित कर दिया था। यही कारण है कि आचार्य श्री विराग सागर जी अहर्निश साधना की असीम ऊँचाईयों की ओर अत्यन्त तीव्रता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

अर्जन और सर्जना के विविध सोपान-बालक अरविन्द की प्रारंभिक शिक्षा पथरिया और इसके उपरांत श्री शांति निकेतन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में हुई। निष्णात गुरु पंडित जगन्मोहन लाल जी के सान्निध्य ने प्रज्ञा की अन्तर्ज्योति को जागृत कर दिया। ज्ञानाराधना की ललक और वैराग्य भावना की व्यग्रता ने मनोयोग पूर्वक अर्जन की प्रवृत्ति को परवाने चढ़ने का काम किया, परिणाम स्वरुप १६-१७ वर्ष की अवस्था में दि. २० फरवरी

१९८० फाल्गुन शुक्ल ५ वि.सं. २०३६ बुढ़ार जिला शहडोल (म.प्र.) में परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तब आपका नाम पू. १ ०५ क्षुल्लक पूर्णसागर जी रखा गया, २०-२१ वर्ष की अल्पायु में दि.९ दिसम्बर १९८३ (मागशिर शुक्ला ५ वि.सं. २०४०) को औरंगाबाद जिला (महाराष्ट्र) में वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, तब आपका नाम मुनिश्री विराग सागर जी रखा गया। दीक्षा ने शिक्षा के विकास क्रम को गंगा की धारा के समान प्रवाहमान रखने में एक उर्जयन्त-उर्जा से संचरित रखा, जिससे अल्प समय में आप न्याय, व्याकरण, दर्शन, साहित्य व अध्यात्म के महान चितेरे बन गए।

महाव्रती की महती प्रभावना-आज का वातावरण विसंगतियों और विद्रूपताओं की कालिमा से कलंकित है। ऐसे वातावरण में मनुष्य का नैतिक विकास हो पाना काफी दुष्कर जान पड़ता है। सर्वत्र हिंसा, अनैतिकता, बेईमानी और झूठ का बोलबाला है, स्वार्थ की संकीर्णताओं ने व्यक्ति को संवेदन शून्य और हृदयहीन बना दिया है, प्रेम और भाईचारे के सद्व्यवहार की अपेक्षाएँ दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है-ऐसे वातावरण में महाव्रती का संदेश जीवन में ऐसी उर्जा का संचार करता है जिससे की जीवन की धारा ही बदल जाती है। आचार्य विराग सागर जी ने भ्रमित युवा पीढ़ी को आचरण और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से जो दिशा-दृष्टि प्रदान की है वह इस सदी की श्रेष्ठतम घटनाओं में इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरित की जायेगी।

कुशल संघ संचालक - मोक्ष के आकांक्षी, वीतरागी पथ के पथिक, पदों से अलिप्त मुनि श्री विराग सागर जी महाराज की उत्तरोत्तर साधना, अनुशासन एवं आगमिक प्रणाली से प्रभावित होकर अनेक आत्म हितैषी उनके साथ आत्म-साधना करने के लिए तत्पर हो गये, साथ ही लगभग १० आचार्य परमेष्ठी उनके मनोज्ञ व्यक्तित्व को देखकर उन्हें अपना आचार्य पद देकर संघ का भार सौंपना चाहते थे तथा कितने ही बार तो अनेक आचार्यों ने उनके आचार्य पद की घोषणाएँ की लेकिन मुनि विराग सागर जी ने 'मैं अभी इस योग्य नहीं हूँ', या 'मेरे गुरु अभी विराजमान है,' ऐसा कहकर उसे स्वीकार न किया, फिर भी समय बड़ा बलवान होता है और ऐसा योग आया कि परम पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा आचार्यश्री विद्यासागार जी महाराज एवं आचार्य श्री सुमति सागर जी आदि अनेक आचार्यों के आशीर्वाद से आचार्यत्व के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण चतुर्विध संघ, द्रोणगिरि की समाज, पंडित दरबारीलाल जी कोठिया (बीना) आदि अनेक विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर दि.८-११-१९९२ (कार्तिक शुक्ला १३, वि.सं. २०४९ को) उन्हें आचार्य पद से विभूषित कर अपने भाग्य को सजाया था। इस प्रकार साधना-पथ पर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर मुनि विराग सागर जी ने अपने ज्ञान, उर्जा और साधना के द्वारा आत्म कल्याण और लोक कल्याण के जिन शीर्ष प्रतिमाओं को स्थापित किया यह असाधारण ही माना जायेगा।

वर्षायोग के अविस्मरणीय क्षण-संयम काल के दौरान आपने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर प्रभावना करते हुए धर्म की ध्वजा को फहराया तथा इस दौरान जहाँ-जहाँ भी आपका चातुर्मासिक प्रवास रहा, वहाँ आपके सम्मोहक व्यक्तित्व से जैन जैनेत्तरों पर ऐसी गहरी छाप पड़ी कि नास्तिक भी आस्तिक हो गये। प.पू. गुरुवर के वृहद प्रभावना के चातुर्मास (१९८०-२००९ तक क्रमशः दुर्ग (म.प्र. १९८०), नागपुर (महाराष्ट्र) (१९८१), कारंजा (लाड) (महा. १९८२ व ८३), भावनगर (गुज. १९८४), पांचवा (राज. १९८५), निमाज (राज. १९८६), जयपुर (राज. १९८७) भिण्ड (म.प्र. १९८८ व ८९), टीकमगढ़ (म.प्र. १९९०) श्रेयांसगिरि (म.प्र. १९९१), द्रोणगिरि (म.प्र. १९९२) श्रेयांसगिरि

Scanned with CamScanner

(म.प्र. १९९३) बीना (म.प्र. १९९४), ललितपुर (उ.प्र. १९९५) जबलपुर (म.प्र.१९९६) भिण्ड (म.प्र. १९९७, ८८ व ९९), सम्मेदशिखर जी (झारखण्ड २०००) गया (बिहार २००१), श्रेयांसगिरि (म.प्र. २००२) भिलाई (छ.गढ़ २००३) कारंजा (लाड) (महा. २००४), मूडबिद्री (कर्नाटक २००५), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू २००६), उदगाँव (महा. २००७), बोरीवली (मुम्बई-महा-२००८), गाँधीनगर (गुज. २००९) लोहारिया (राज.) में सम्पन्न हुए।

संयमी सृजक :- पूज्य गुरुओं के प्रति विनय भाव तथा शिष्यों के प्रति वात्सल्य एवं करुणा भाव तथा समाज के सही मार्गदर्शक एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परमागाढ़ श्रद्धा को देख अनेक भक्तों ने आपको अपना गुरु चयन कर आपका शिष्यत्व धारण कर अपने जीवन को मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित किया व आपके साथ चलने को तैयार हो गए, आपने संयम काल के ३० वर्षों में भारत के १० प्रान्तों की लगभग ४०,००० कि.मी. पैदल यात्रा कर अनेकों सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों एवं नगरों में आध्यात्मिक साधना कर अनेकों भव्यों के दीक्षाएँ दी हैं जिसमें अतिशय क्षेत्र बरासों (भिण्ड) की १३ मुनि दीक्षाएँ, ललितपुर की २१ दीक्षाएँ तथा श्रवणबेलगोला की २५ दीक्षाओं ने जन मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और जिससे जैन-जैनेत्तरों में महत्ती प्रभावना हुई। यही कारण है कि आप एक विशाल एवं श्रेष्ठ वटवृक्ष की तरह है जिसकी छत्रछाया में ७ आचार्य, ५२ मुनि, ४६ आर्यिका, ३ ऐलक, २५ क्षुल्लक, १९ क्षुल्लिकाएँ एवं अभी आपके निर्देशन में लगभग १५० से भी अधिक ऐसे भी विनेय साधक है जो अंतेवासिन के रूप में अपनी साधना में संलग्न है तथा आपके कुशल निर्यापकत्व में अनेक साधुओं एवं साध्वियों ने समाधि कर अपने जीवन को सार्थक किया है।

अनुपम अनुशासन एवं चारित्र साधक- चारित्र संवर्धक अनुशासन के पथानुगामी गुरुदेव आप मात्र शिष्यों को दीक्षा ही नहीं देते किन्तु उन्हें शिक्षा दे अनुशासन में भी रहना सिखाते है। जो शिष्य अनुशासनवान होते है उन्हें सतत् संस्कारित कर ऊँचा उठाते हैं। अपने शिष्यों में आध्यात्मिक संत युवा आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी, आचार्य विशद सागर जी, आचार्य श्री विभव सागरजी, आचार्य श्री विमर्श सागरजी, आचार्य श्री विहर्ष सागरजी, आचार्यश्री विनिश्चय सागरजी तथा प्रवचन पटु आचार्य श्री विमद सागर जी आदि को तो आपने २००५ कुंथुगिरि से ही आचार्य पद की घोषणाएँ कर दी थी, किन्तु धन्य है ऐसे शिष्यों को, कि उन्होंने पद की होड़ नहीं की। अपितु उक्त महाराजों में से अभी ३ मुनिराजों को मुनि श्री विशुद्ध सागर, मुनि श्री विभव सागर, मुनि श्री विमदसागर जी को पू. गुरुदेव ने ही अपने हाथों से उन्हें आचार्य पद के योग्य शिक्षा एवं प्रायश्चित ग्रंथ पढ़ाने के पश्चात औरंगाबाद में ३१ मार्च २००७ को आचार्य पद से विभूषित कर अपने हृदय की उदारता का साकार दर्शन दिया।

अनुशासक वही हो सकता है जो प्रथम स्वयं ही अनुशासन के सांचे में ढला हो, वे अनुशासन में मात्र ढले ही नहीं, किन्तु समग्र शिष्यों को भी अनुशासन में ढाला है यद्यपि अनुशासन विहीन ईर्ष्यालु कुछ शिष्यों ने अपना ग्रुप बना दैविक झूठे चमत्कारों की ख्याति अर्जन हेतु अनुचित प्रयत्न किये किन्तु आचार्यश्री ने उन्हें प्रथम समझाया जब वे नहीं माने तो उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया जिससे उन लोगों ने समय-समय पर आप पर छींटा कशी भी की, किन्तु आप जरा भी अपनी साधना से विचलित नहीं हुए। सूर्य की भाँति प्रकाशमान ही होते रहे हैं तथा अपने अनुशासन में किंचित् भी ढील नहीं दी और न किसी परिस्थिति के सन्मुख घुटने टेके हैं। यहीं कारण हैं उनमें से कतिपय लोगों ने क्षमायाचना कर प्रायश्चित लिया। यही देख स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी श्रवणबेलगोला के मुख से शब्द प्रस्फुरित हुए कि "आचार्य विराग सागर जी एवं उनका संघ चलती-फिरती युनिवर्सिटी है।"

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी-वैराग्य को दृढ़ करने एवं संयम साधना को निर्दोष बनाने तथा आगमानुकूल चर्या

Scanned with CamScanner

बनाने के लिए, समय का सदुपयोग, धर्म ध्यान की वृद्धि एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारणभूत अहर्निश आचार्य प्रणीत शास्त्रों के स्वाध्याय में आप निमग्न रहते हैं तथा अपने साधु समूह को भी निरंतर स्वाध्याय के महत्व को बताकर उन्हें अध्ययन के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते हैं, यही कारण है कि आपने श्री षटखण्डागम धवला जी की ५ वर्षों में १६ वाचनायें बुंदेलखण्ड में मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में निर्विघ्न पूर्ण की, साथ ही कषायपाहुड जय धवल ग्रन्थ के कषाय पाहुड भाग-१ की वाचन अहमदाबाद, उस्मानपुरा (गुज.) में तथा कषाय पाहुड भाग-२ की वाचना विद्यासागर तपोवन, सिद्धक्षेत्र तारंगाजी (गुज.) में तथा भाग-३ की वाचना अतिशय क्षेत्र केशरियाजी (राज.) सानंद सम्पन्न हुई। साथ में अनेक स्थानों में सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर व विद्वत गोष्ठि का सफल आयोजन किया तथा आपने अपने शिष्यों को महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अष्टसहस्त्री, त्रिलोकसार, तिलोपण्णति, गोम्मटसार, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, लब्धिसार, आचारसार जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन कराया, जिससे स्पष्ट है कि आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान हैं।

श्रुतसेवा-ज्ञान के प्रति अभिरुचि होने से आप निरंतर श्रुत सेवा में तल्लीन रहते हैं और आगम के चिंतन एवं मनन के द्वारा तत्व की गहराई में उतरकर उसके गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन कर आगम की पुष्टि करते हुए लोगों की भ्रांति को दूरकर उनके सम्यग्दर्शन को निर्मल करते हैं। इस प्रकार आपने आगम के आधार से अपने साधना काल में अनेक कृतियों का सृजन कर माँ जिनवाणी के भण्डार को समृद्ध कर एवं पर के मिथ्यांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश किया है, जिसमें मुख्य कृतियाँ सम्यग्दर्शन, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन, शुद्धोपयोग, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म आदि हैं। जिसमें शुद्धोपयोग कृति, जिस पर लगभग १५० विद्वानों ने समीक्षा कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है क्योंकि यह कृति अनेक मिथ्या विकल्पों का निसर्ग करती है। साहित्य सृजन की इस श्रृंखला में प.पू. कुंदकुंदाचार्य स्वामी द्वारा रचित वारसाणुवेक्खा नामक ग्रंथ पर आपके द्वारा लिखी गई संस्कृत **"सर्वोदयी टीका"**, तथा रयणसार ग्रंथ पर संस्कृत **"रत्नत्रयवर्धनी टीका"** जिन आगम के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है क्योंकि प.पू. आचार्य कुंदकुंदस्वामी के इन ग्रंथों पर संस्कृत टीका अभी तक अनुपलब्ध थी, श्रुत सेवा में आपका यह महान अवदान युगांत तक सदैव स्मरण किया जायेगा। इस तरह सर्जना के क्षेत्र में लगभग ५० पुस्तकों के द्वारा सरस्वती के भण्डार को भरने का आपने जो भागीरथ कार्य किया है वह अनुपम है इनमें भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के ऐसे बहुविध रूप देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही आकलन किया जा सकता है।

आपकी सत् प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, भिण्ड, अनेकों धार्मिक एवं लौकिक (शिशु, प्राईमरी, मिडिल एवं हाईस्कूलीय) शिक्षायें प्रदान कर रही हैं। इसी प्रकार पन्ना में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन स्कूल, ब्रजपुर में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्यालय भी अपनी मिडिल तक की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। बीना में आचार्य विराग सागर जी बी.एड. कॉलेज ने अल्प समय में बहुत बड़ी सफलता हासिल की है।

धर्म प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में विराग वाणी मासिक पत्रिका निरन्तर हर स्तर के आलेखों से भरपूर रहती हुई जन मानस को आकर्षित करती है।

बहु आयामी विशेषताओं से समन्वित
पूज्य आचार्य श्री के दर्शन इस रुप में भी करें-

Scanned with CamScanner

१. जो टी.वी, मोबाइल, लेपटॉप, पंखा, कूलर एवं ए.सी. का उपयोग नहीं करते हैं।
२. जो बाथरुम में लघुशंका एवं शौचालय में दीर्घ शंका (शौच) नहीं जाते हैं।
३. जो करीब २५ वर्षों से नाखून अपने हाथ से ही निकालते हैं (ब्लेड, नैलकटर या कैंची से नहीं निकालते हैं)
४. जिन्हें कभी थूकते हुए नहीं देखा गया हैं।
५. जो आहार में द्विदल नहीं लेते है।
६. दही, तेल का जिनका आजीवन त्याग है।
७. सभी प्रकार की हरी पत्तियाँ एवं (मटर के अलावा) सभी हरी फलियों का जिनका आजीवन त्याग है।
८. जो प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को नीरस करते हैं।
९. जो किसी भी महिला से एकान्त में अकेले चर्चा नहीं करते हैं।
१०. जिनका कोई प्रोजेक्ट नहीं है तथा चंदा - चिट्ठा से दूर रहते हैं।
११. जिनके संघ में मोटर, कार, जीप तथा अनावश्यक परिग्रह नहीं है।
१२. जिनके संघ में कोई संघ संचालिका नहीं है।
१३. जो तंत्र-मंत्र नहीं करते तथा किसी की कुण्डली एवं हाथ आदि नहीं देखते हैं।
१४. जो औषध (दवाईयों) को न रखते हैं, न बताते हैं।
१५. जिनमें पंथ-परंपरा का कोई दुराग्रह नहीं है।
१६. जो गरीब और अमीर को समान रुप से देखते हैं।
१७. जो सदैव ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।
१८. जो किसी की बुराई या निंदा न सुनते हैं और न करते हैं।
१९. बड़े-बड़े कष्टों में जिनकी सहिष्णुता देखी गई है।
२०. बड़े-बड़े उपसर्गों में भी जिनकी बड़ी धैर्य व समता के दर्शन हुए।
२१. जिन्होंने अभी तक विभिन्न मंत्रों की लगभग तीस लाख से भी अधिक जाप की है।
२२. जो विहार आदि के समय में भी प्राय: जाप करते रहते हैं।
२३. जो श्वासोच्छ्वास से कायोत्सर्ग करते हैं।
२४. जो मुनिचर्या के २८ कृतिकर्म प्रतिदिन करते हैं।
२५. जो अपने संघस्थ साधुओं को आगम, अध्यात्म, सिद्धांत, व्याकरण, न्याय आदि की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं।
२६. जो संघस्थ आबाल-वृद्धों का पूरा ध्यान रखते हैं।
२७. जिन्होंने अभी तक कर्मदहन, णमोकार पैंतीसी, सर्वदोष परिहार, प्रत्याख्यान, पंचविंशतिका, वचनगुप्ति, नीति सागर, षडरसी, भक्तामर, समवशरण व्रत कर लिये हैं तथा चारित्र शुद्धि व्रत कर रहे हैं।
२८. जो प्रत्येक अष्टमी-चतुर्दशी को प्राय: २२ घंटे का मौन रखते हैं। तथा जो प्रतिदिन आवश्यकों के अलावा भी एक घंटे का मौन रखते हैं।
२९. विशाल संघ के संचालन की जिनकी अपूर्व ही क्षमता है।

Scanned with CamScanner

३०. जिनका १० अन्न एवं १५ हरी का आजीवन नियम है।

प्रतिभा सम्पन्न गणाचार्य - १६-१७ अगस्त २००३ जब उपसर्ग के बादल आप पर मंडराये, तब आपकी एक आसन से ३६ घंटे की लगातार निराहार योग ध्यान साधना, अथाह समता, मेरुवत् संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर छत्तीसगढ़ (भिलाई, दुर्ग, वैशाली आदि अनेक स्थानों) की समाज ने आपको **'उपसर्ग विजेता'** की उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित किया था। २००४ के चातुर्मास काल में आपकी निर्मल साधना से प्रभावित होकर कारंजा समाज ने आपको **'चारित्र शिरोमणि'** की उपाधि से अलंकृत कर अपने जीवन को कृतार्थ किया।

आपने अपनी कुशलता के द्वारा अल्पायु में शताधिक पथिकों को मोक्ष की राह दिखाकर उनका मोक्षमार्ग प्रशस्त किया है इसलिए परम पूज्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज ने २००५ में १५ आचार्यों एवं २०० साधुओं की उपस्थिति में जनसमूह के समक्ष आपको **'श्रमण रत्नाकर'** की उपाधि से सुशोभित किया था। आपने जो धवला ग्रंथ की १६ पुस्तकों की वाचना लगभग १५० विद्वानों की उपस्थिति में ५ वर्षों में पूर्ण की है इससे प्रभावित होकर २००५ में मूडबिद्री के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी एवं वहाँ की समाज ने आपको **'सिद्धांतरत्न'** की उपाधि प्रदान कर अपना अहोभाग्य समझा था। आपने अपने संयमी जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों का रसास्वादन किया है, कराया है इसलिए आप उपसर्गों से गुजरकर भी काँटो में गुलाब की तरह विकसित हुए अतः आपकी अध्यात्म साधना से प्रभावित होकर धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र कुमार हेगड़े जी ने २००५ धर्मस्थल में **'अध्यात्म योगी'** की उपाधि से विभूषित कर अपना गौरव बढ़ाया है। २००६ मेलचित्तामूर में स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारकजी ने **'समता मूर्ति'** की उपाधि से, २००७ औरंगाबाद में त्रय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्यश्री विमद सागरजी एवं वहाँ की समाज ने लगभग २५ संघों के नायक होने से आपको **'गणाचार्य'** तथा २००७ शिरडशाहपुर में हुए श्री मल्लिनाथ श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव के पावन सुअवसर पर परम पूज्य आचार्य विभव सागर जी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज ने **'वात्सल्य रत्नाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने जीवन में गुरु महिमा का प्रकटीकरण कर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। आपने अपने विगत २७ वर्षों के साधनाकाल में राष्ट्र के लगभग संपूर्ण प्रांतों में भ्रमण कर अहिंसा व शाकाहार का संदेश जन जन तक पहुँचाया है अतः सन् २००७ में आपके मुनि दीक्षा के २५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर कुंजवन उदगाँव में **"राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव"** के अवसर पर कुंजवन ट्रस्ट समिति उदगाँव, राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव समिति, राष्ट्रीय विराग युवा व महिला मंच, भिंड तथा सांगली एवं विधायक कपूरचंद जी घुवारा ने आपको **'राष्ट्रसंत'** की उपाधि प्रदान की। इसी अवसर पर प.पू. निमितज्ञानी आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की कीर्ति को देश-प्रदेशों में प्रचार करने से प.पू.तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज ने आपको **'विमल कीर्ति'** की उपाधि दे असीम वात्सल्य का अद्वितीय उपहार दिया। आपकी निर्मल छवि को देख सकल दिगम्बर जैन समाज व विमर्श सेवा समिति शिवपुरी ने **'आचार्य गौरव'** तथा सिद्धांत शास्त्रों के अभीक्ष्ण ज्ञान से ओत प्रोत होने से पंडित धनपाल हबले सहित उपस्थित विद्वानों ने आपको **'सिद्धांत चक्रवर्ती'** की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान में न्याय एवं दर्शन की क्षीण होती विद्या का आपने स्वयं अध्ययन किया एवं विशाल शिष्य समूह को कराया इसलिए **'राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष समापन समारोह-२००८'** को भव्य आयोजना के अवसर पर श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी देहरासर ट्रस्ट गुलालवाड़ी,

Scanned with CamScanner

मुंबई सहित भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी कोल्हापुर, भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी मेलचित्तामूर, प्रतिष्ठाचार्य प्रदीप जैन, 'मधुर,' प्रतिष्ठाचार्य कमल शास्त्री कलकत्ता तथा पंडित भरत काला आदि ने प.पू. गुरुदेव को **'न्याय भास्कर'** की उपाधि प्रदान की। तथा इसी अवसर पर मुनि श्री विवर्जन सागर जी महाराज की भावना के अनुरुप सकल दिगम्बर जैन समाज आदम्पाकम (चेन्नई) तथा पंडित सिहचंद्र जी शास्त्री ने आपको **'श्रमण सूरि'** की उपाधि से विभूषित किया। इसी श्रृंखला में भगवान नेमीनाथ एवं ७२ करोड़ ७०० मुनिराजों की निर्वाण भूमि श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्तमुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू.आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज, **आचार्य रत्न** की उपाधि देकर असीम वात्सल्य का परिचय दिया। तथा गुजरात प्रांत के साबरकांठा जिले के तलोद गाँव में पद्मनंदी पंचविशंतिका की सुफल वाचना के एवं २७वां मुनिदीक्षा के सुअवसर पर २००९ में तलोद समाज द्वारा **'विद्या वारिधी'** की उपाधी दे अपने जीवन को उपकृत किया है।

इसी प्रकार आपके लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर विद्वानों ने उपाधियाँ दी, यथा सन् १९८८ बरासों में समाज ने **'क्रांतिकारी संत,'** १९९४ बीना की समाज ने **'बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य,'** १९९५ जबलपुर में साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने **'निस्पृही संत,'**१९९९ भिण्ड में पण्डित श्री सुमतिचंद्र जी शास्त्री ने **'अध्यात्म सिद्धांत वारिधि,'**२००१ गया में पण्डित श्री लक्ष्मण प्रसाद जी ने **'न्याय मार्तण्ड,'**२००२ श्रेयांसगिरि में **'तीर्थ उद्धारक एवं संत शिरोमणी,'** २००४ राजिम में पण्डित श्री ऋषभ कुमार जी ने **'समाधि सम्राट,'** २००५शमनेवाड़ी में परम पूज्य आचार्य गुणधरनंदीजी महाराज ने **'ज्ञान दिवाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने आपको गौरवान्वित किया। तथा २०१० डूंगरपुर (राज.) में परम पूज्य आचार्य श्री कनकनंदीजी महाराज ने **'प्रशांत मूर्ति'** की उपाधि दे आत्मीय वात्सल्य का परिचय दिया।

कृतित्व एवं व्यक्तित्व की गौरव गाथा-आपके ऊर्जा पूर्ण महामानवीय जीवन पर श्री साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने 'निस्पृही संत' कृति तथा प्राकृत मनीषी प्रो. उदयचंदजी उदयपुर ने साहित्य विद्या से परिपूर्ण प्राकृत भाषा में 'विराग सेतु' महाकाव्य कृति लिख जन मानस को आचार्य श्री के असीम व्यक्तित्व से परिचय कराया है एवं डॉ.लोकेश खरे ने आपके असीम कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर पी.एच.डी. कर डॉक्टरेट की उपाधी प्राप्त की है।

अहिंसा और मानव धर्म के संदेश वाहक-आज सर्वत्र हिंसा का साम्राज्य है। यह हिंसा किसी जीव की नहीं वरन् उन मूल्यों की है जो हमारी संस्कृति के प्रबल आधार है। सांस्कृतिक मूल्यों का आज जिस तरह से ह्रास हो रहा है वह अत्यन्त दुःखदायी है। मानवीय सम्बन्धों में जिस तीव्रता के साथ. बेचारगी का बोलबाला बढ़ रहा है उससे आत्मीयता धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। संवेदनशून्य मानव आज जिस मुकाम पर खड़ा है वह एकदम हताश, निराश और विवश है, ऐसे नैराश्य के वातावरण में आचार्य श्री की वाणी के द्वारा जिन अमृत वचनों की वर्षा जगह-जगह पर हो रही है वह संतप्त मानवा के लिए संजीवनी की तरह जीवनदायिनी का काम कर रही है। जीवन का अर्थ क्या है ? इसे अर्थवान बनाने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यता होती है ? इतिहास के द्वारा स्मरण पाना कैसे संभव है ? आदि जीवन के उन शाश्वत सूत्रों का संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देखने को मिलता है। व्यक्ति को आज हम इस बात का बोध होना चाहिए कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। इसकी रक्षा के लिए व्यक्ति को सतत सचेत रहना चाहिए । आचार्य श्री ने मानव धर्म और महावीर के प्रमुख सिद्धांत अहिंसा का जन जन तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसे इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा।

Scanned with CamScanner

कृति के प्रति

हमारा जन्म इस विषम दुषमा काल में हुआ है जहाँ न साक्षात् जिनेन्द्र देव हैं और न साक्षात् जिनदेशना । फिर भी इतना तो सौभाग्य है कि प्रवाह रूप से चली आ रही वह देशना और उसे प्रवाहमान बनाये रखने वाले सच्चे भावलिंगी गुरुजन आज भी विद्यमान हैं । जिनके विषय में पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने मेरी भावना में कहा है-

विषयों की आशा नहीं जिनके, सम्यभाव धन रखते हैं,
निज पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के, दुख समूह को हरते हैं ॥

ऐसे गुरुवर हमें सावधान करते हैं कि अब भी सम्भल जाओ, यह नरभव बार-बार नहीं मिलता । महातप धारण कर जीवन को सार्थक करो और यदि इसमें समर्थ नहीं हो तो पवित्र श्रावक धर्म का पालन कर महातपधारियों की सेवा करो ।

उक्त आशय को लेकर ही परम पूज्य आचार्य श्री पद्मनंदी महाराज ने अपने "पद्मनंदि पंचविंशतिः" ग्रंथ का दूसरा अधिकार "दानोपदेशन" रचा होगा । परम पूज्य गुरुवर गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज के श्री मुख से जब इस ग्रंथराज के प्रथम अधिकार का वाचन गांधीनगर (गुजरात) में चल रहा था तब लगता था कि मानो धर्म की अजस्र धारा ही बह रही है जिसने श्रावकों को ही नहीं साधु संघ को भी अभिभूत कर दिया । कारण यह कि एक तो "पद्मनंदि पंचविंशतिः" जैसा महान ग्रंथ और उस पर पूज्य गुरुवर के समझाने की सरल, सुबोध और मनोहारी शैली । बड़ी प्रशन्नता की बात है कि इसके दूसरे अधिकार- "दानोपदेशन" का वाचन तलोद नगर (गुजरात) मे भी गुरुवर के श्री मुख से हुआ और "पद्मनंदि पंचविंशतिः" ग्रंथ की अनुपम, अध्यात्म रस छलकाती गाथाओं को लेकर पूज्य श्री ने श्रावकों के मुख्य धर्म दान पर सविस्तृत विवेचना की ।

पूज्य आर्यिका श्री १०५ विशिष्ट श्री माताजी ने गुरुदेव के उक्त प्रवचनों का संपादन एवं पूज्य आर्यिका श्री १०५ विवक्षा श्री माताजी ने संकलन कार्य कर श्रुत भक्ति एवं गुरु भक्ति का जो परिचय दिया है वह श्लांघनीय / अनुकरणीय है । हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह कृति आपको जीवन के उन क्षणों में मार्गदर्शन प्रदान करेगी जब आप प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य समता और शांति की अभिलाषा करेंगे ।

इसी भावना के साथ-परम पूज्य राष्ट्रसंत गणाचार्य गुरुवर के श्री चरणों में कोटिशः नमोस्तु ! नमोस्तु ! नमोस्तु !

गुरु कृपाकांक्षी
आः विदक्षाश्री

Scanned with CamScanner

दो शब्द

शुभ भावना

गुरुदेव के श्री चरणो में त्रिकाल नमोस्तु

आचार्य पदमनंदि पंचविंशति: अ.२ "दानोपदेश" मूल गाथा पर प्रवचनकार परम पूज्य गणाचार्य श्री विरागसागरजी गुरुदेव ने सरलतम विवेचन कर सामान्यजन को समझाने का प्रयास किया है। मानव पुण्योदय से अपनी बुद्धि विवेक व श्रम से अर्थोपार्जन करता है लेकिन उसका सदुपयोग नहीं हो पाता। जैन धर्म त्याग प्रधान है भोग प्रधान नहीं, मानव शुभ कार्यो में धन लगायेगा तो उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होगी, धन की तीन गति है "दान भोग नाशं" दान कब व कहाँ दिया जाये - पूज्य गणाचार्य श्री ने छोटे - छोटे दष्टान्तों से, उदाहरणों से समझाने का प्रयास किया है। धन को जब मांगने का समय आता है मांग नही सकते तो तीसरी गति नाश जो अवश्यभावी है वह धन क्लबो में, व्यसनो में लगे उससे पूर्व हम पुण्यरूपी एफ. डी. जमा कर लें।

In this word it is not what we take up but what we give up that make us Rich.

हमने क्या पाया उसका महत्व नही महत्व है हमने क्या दिया, वही हमें महान बनाता है। गाँधीजी ने जब त्याग किया तो संसार ने उन्हे महात्मा कहा। कोई अपनी नाव में पत्थर भरता जाय तो वह डूबेगी।

परम पूज्य गणाचार्यश्री ने प्रथम गाथा में आदिब्रह्मा ऋषभदेव जिनको अक्षय तृतीया के दिन इक्षु रस का आहार देकर नवधाभक्तिपूर्वक पड़गाहन कर जाति-स्मरण होने से श्रेयांस, दान तीर्थ मे प्रसिद्ध हो गये, आहार दान की प्रशंसा चक्रवर्ती भरत ने स्वयं की। देवो द्वारा पंचाश्चर्य दाता के पुण्योदय का यशोगान करते है। गाथा की व्यारव्या करते हुवे पूज्य गणाचार्य श्री ने बताया है कि एक गृहस्थ अपने जीवन में जो पाप उपार्जित करता है एक संत को आहार कराकर पापो की कालिमा धो सकता है। पात्र दान उत्तम कार्य है चूंकि संत त्यागी थोड़ा आहार लेते हैं और लोक कल्याण हेतु महान कार्य करते है, संसार मे शान्ति, सदाचार, सतश्रद्धा, सद्ज्ञान का प्रचार करते हैं तथा अपनी आत्म-शुद्धि करते है, तीर्थंकर मुनिराज का जहाँ आहार हो जावे वह दाता स्वल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है।

Scanned with CamScanner

आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने कुरल काव्य में बताया है -

अतिथि देव की भक्ति में, जिनको नहो प्रमाद।
उस नर पर टूटे नहो, संकट भीति विषाद ॥
पूर्व अतिथि फिर शेष जो, जीमे प्रेम समेत।
आवश्यक होता नहो, बौना उसको खेत ॥

हमारा दान वृक्ष व नदियों के समान हो, जो दिये दान का हिसाब - बखान न करे। दान प्रतिकार व प्रत्युपकार की भावना से रहित हो।

लक्ष्मी दायादयश्चत्वारः दान राजाग्नि तस्कराः।
ज्येष्ठ पुत्रापमानेन त्रयः कुव्यन्ति बान्धवाः ॥

लक्ष्मी चंचल है उसके चार पुत्र हैं - दान, राजा, अग्नि, तस्कर। बड़े पुत्र (दान) का जब भी अपमान होता है शेष तीनो भाई कुपित, रुष्ट हो जाते हैं

दान देने वाले को दवा नहीं लेनी पडती (हार्ट अटैक नहीं होता)।

परम पूज्य गणाचार्य श्री ने प्रवचन के माध्यम से विवेचन में विभिन्न दृष्टान्तों का सुन्दर चित्रण किया है जो हम सरलता से समझ सकते है, द्रव्य क्षेत्र काल एवं भाव की योग्यता समझ कर दान देवें, दान चार प्रकार का है, आवश्यकतानुरुप एवं निरपेक्ष व्यक्ति को दान देवें, दान के बदले प्रतिदिन की चाह न हो, काषायिक भावों से दान न देवें, दान में कार्यण्यता न हो व बाद में पश्चाताप नहीं करना। अहं या नाम के लिये दान न दें, पानी बहता रहेगा तो उत्तम, नहीं तो सड़ जायेगा, मनुष्य दो हाथ से कमाता है तो एक हाथ से देना सीखे, बादल जल संचित करते हैं तो उनका वर्ण श्याम होता है परन्तु जब वर्षा कर देते हैं तो श्वेत हो जाते हैं, उपर उठ जाते हैं। मानव अथक श्रम से धनोपार्जन करता है सत्य है, लेकिन पुण्य होगा तभी भोग सकेगा नहीं तो नाश होना ही है, श्रेष्ट कार्यो मे चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग कर पुण्यार्जन करें।

परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जी गुरुदेव वात्सल्य मूर्ति हैं, आपका ज्ञान उच्च कोटि का है, आम जनता के लिए गाथाओं का सरलतम विवेचन मात्र परोपकार की भावना ही हैं।

पूज्य आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी ने सम्पादन एव पूज्य आर्यिका विवक्षा श्री माता जी ने गुरुदेव के प्रवचनों का संकलन करके श्रेष्ठ कार्य किया है कि हम दान करें कब कैसे व किसे करें ? यह कृति न केवल जैन समाज वरन जैनेतर के लिए भी प्रेरणादायी हा - शुभ भावना के साथ

गुरुचरण चञ्चरीक
सुधीर मार्तण्ड, ऋषभदेव
(प्रतिष्ठाचार्य)

Scanned with CamScanner

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	प्रवचन	श्लोक	पेज नं.
१.	व्रत तीर्थ और दान तीर्थ	१	१	१
२.	दान से होता यशोगान	२	२-४	५
३.	उत्कृष्ट दान-गुणों में प्रधान	३	५-८	१०
४.	इन्द्र भी तरसे-दान पुण्य को	४	९-११	१५
५.	दान बीज से मोक्ष फल	५	१२-१४	२०
६.	दान से मोक्ष की सिद्धि	६	१५-१८	२६
७.	दान रुपी पुण्य लक्ष्मी	७	१९-२३	३२
८.	दान से पुण्य रिजर्व करें	८	२४-२९	३९
९.	यश और सुख का कारण दान	९	३०-३६	४६
१०.	अपना पराया धन	१०	३७	५२
११.	आहार दान की प्रेरणा	११	३८	५७
१२.	परमार्थ में लोभ कैसा ?	१२	३९-४२	६०
१३.	दान से बरसे पुण्य अपार	१३	४३-४६	६७
१४.	धन का विचार	१४	४७-४८	७५
१५.	दान करें हम किसका ?	१५	४९-५०	७९
१६.	दान की शिक्षा, धार्मिक संस्कृति की रक्षा	१६	५१-५३	८३
१७.	महिमा दान दाता की	१७	५४	८९

Scanned with CamScanner

प्रव.१/श्लोक - १

व्रत तीर्थ और दान तीर्थ

> ◆ धर्म रुपी नदी के दो तट कहे गये है एक तट का नाम मुनि और दूसरे तट का नाम श्रावक है। यदि नदी के दोनों तट सही है तो धर्मरूपी पानी उचित स्थान तक पहुँच जायेगा और यदि दोनों तटों में एक भी तट न रहे तो पानी यथास्थान तक नहीं पहुँच सकता है।

बंधुओ ! 'पद्मनंदि पंचविंशति' ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है जिसमें आचार्य महाराज ने इस छोटे से ग्रंथ को २५ भागों में बाँटा है और इन २५ भागों के नाम से तथा पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज इसके लेखक होने से इस शास्त्र का नाम 'पद्मनंदि पञ्चविंशतिः' यह सार्थक नाम पड़ा है। और यह 'पद्मनंदि पञ्चविंशतिः' इस नाम से प्रसिद्ध हो गया। अथवा यूँ कहे कि पद्म का अर्थ कमल होता है और हमारे शास्त्रों में भी भव्य जीवों को कमल की उपमा दी गई है ऐसे भव्य जीव रुपी कमलों को संबोधन करने वाले पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज तथा जिन्होंने २५ अधिकारों में अलग-२ विषयों को लेकर व्याख्यान किया है इस कारण से इस ग्रंथ का नाम 'पद्मनंदि पंचविंशतिः' सार्थक नाम पड़ा। जिसमें इस ग्रंथ के दूसरे अधिकार का नाम हैं 'दानोपदेशम्'। इस अधिकार में श्रावक के प्रधान धर्म दान का वर्णन किया है। रयणसार ग्रंथ में अध्यात्म जगत के राजहंस आचार्य कुंदकुंद देव से जब पूछा गया कि- हे गुरुदेव ! श्रावकों को किस धर्म का पालन करना चाहिये ? तब पूज्य आचार्य महाराज ने रयणसार की गाथा १० में कहा-**'दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे...'**

अर्थात् सत्पात्रों को दान देना और जिनेन्द्र भगवान की पूजा ये श्रावक के दो मुख्य धर्म है। इसके बिना श्रावक, श्रावक कहलाने के योग्य (अधिकारी) नहीं होता है। तथा साधु के विषय में कहा-**'झाणाज्झयणं मुक्खं'**। अर्थात् ध्यान और अध्ययन करना साधुओं का मुख्य धर्म है।

वैसे भी मोक्षमार्ग में जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित जो धर्म है उसके लिये नदी की उपमा दी गई है और उस **धर्म रुपी नदी के दो तट कहे गये है एक तट का नाम मुनि और दूसरे तट का नाम श्रावक है। यदि नदी के दोनों तट सही है तो धर्मरूपी पानी उचित स्थान तक पहुँच जायेगा और यदि दोनों तटों में एक भी तट न रहे तो पानी यथास्थान तक नहीं पहुँच सकता है।** इसलिये हमारे परम वीतरागी सर्वज्ञ प्रभु जिनेन्द्र देव ने कितना सुंदर व्याख्यान किया और परम्परा कायम करने के लिये कहा कि मुनि जन मुनि धर्म का पालन करे तो इससे मुनियों की शोभा है। श्रावक जन श्रावक धर्म का पालन करे तो इससे श्रावकों की शोभा है। पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज दूसरे अध्याय 'दानोपदेशम्' के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हुये लिखते है-

जीयाज्जिनो जगति नाभिनरेन्द्रसूनुः, श्रेयो नृपश्च कुरुगोत्रगृहप्रदीपः।
याभ्यां बभूवतुरिह व्रतदानतीर्थे, सारक्रमे परम धर्मरथस्य चक्रे ॥१॥

अर्थ - जिनके द्वारा उत्तम रीति से चलने वाले श्रेष्ठ धर्म रुपी रथ के चाक के समान व्रत और दान रूप दो तीर्थ यहाँ आविर्भूत हुए हैं वे नाभिराज के पुत्र आदि जिनेन्द्र तथा कुरुवंश रूप गृह के दीपक के समान राजा श्रेयान् भी

Scanned with CamScanner

जयवंत होवें।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव / आदिनाथ भगवान सदैव जयवंत रहें। क्यों कि उन्होंने धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया है तथा कुरुवंश रुप गृह के दीपक महाराजा श्रेयांस जिन्होंने दान तीर्थ का प्रवर्तन किया है वे भी सदैव जयवंत रहे। ये दोनों धर्म वास्तविकता में धर्मरुपी रथ के चलाने के दो चक्र है जिस पर भव्यप्राणी आसीन होकर भव से पार हो जाते है। जब हम प्राचीन इतिहास को उठा कर देखे तो मध्यलोक का कुछ ऐसा स्थान है जहाँ पर काल चक्र परिवर्तन होता रहता है। जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन, ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षाऋतु, वर्षाऋतु के बाद शीत ऋतु आती है ठीक इसी प्रकार उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी काल आता है। प्रत्येक काल के ६ विभाग होते है जिसमें सुषमा-सुषमा, सुषमा और सुषमा-दुषमा में ये तीन काल भोगभूमि काल है तथा शेष तीन काल दुषमा-सुषमा, दुषमा और दुषमा-दुषमा ये कर्मभूमि काल कहलाते है। भोगभूमि काल में भोग प्रधान होते हैं (उसमें पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होती है इसलिये उसका नाम भोगभूमि पड़ा । सब कुछ बना बनाया मिल जाता है)। उस भोगभूमि काल में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते है उन कल्पवृक्षों के माध्यम से भोग भूमियाँ जीव अपनी पूर्ति कर लेते है। तथा उस भोगभूमि में पुण्यवान् और भाग्यवान् व्यक्तियों का ही जन्म होता है। इसलिये उनके लिये सब कुछ अनुकूल होता है। उनकी आयु तथा अवगाहना भी बहुत होती है लेकिन यह विज्ञान के लिये एक चुनौती है क्योंकि विज्ञान के द्वारा मनुष्यों का जन्म मछ्ली, मेढ़क, बंदर, गोरिल्ला आदि से हुआ लेकिन जैन धर्म इसे स्वीकार नहीं करता। जैन धर्म के अनुसार भोगभूमि काल में युगल बालक- बालिका का जन्म होता था और जन्म देते ही माता को जम्हाई आती थी तथा पिता को छींक आती थी तथा वे अपने बालक का मुख देखे बिना मरण को प्राप्त हो जाते थे।

बालक-बालिका ओर वे उत्पन्न उत्तम भोग भूमि में ३ दिन, मध्यम भोगभूमि में ५ दिन तथा जघन्य भोगभूमि में ७ दिन तक अंगूठा चूसते थे इस प्रकार उनकी ७-७ अवस्थायें होती थी जिसमें उत्तम भोगभूमि में २१, मध्यम भोगभूमि में ३५ और जघन्य भोगभूमि में ४९ दिन के अन्दर युगल बालक-बालिका जवान हो जाते थे। अभी तक जो बालक-बालिका के रूप में थे अब वे युगल पति-पत्नी के रुप में परिवर्तित हो जाते थे। भोगभूमि का अर्थ यह भी नहीं है कि वे निरन्तर विषय भोग ही भोगते रहते हो बल्कि उनके परिणाम ज्यादा विकृत नहीं होते क्योंकि वासना पापकर्म के उदय से उत्पन्न होती है और जिसका जितना अधिक पापकर्म का उदय रहता है उतनी अधिक उसके अंदर वासनाऐं उत्पन्न होती है जिससे वे अधिक पापकर्म को बांधते है। लेकिन भोगभूमियाँ जीव के पुण्य कर्म का उदय होता है और वे अपने जीवन के आखिरी समय में ही विषय सेवन करते है और युगल को जन्म देकर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार भोजनांग, पानांग, वस्त्रांग, भूषणांग, भाजनांग, तूर्यांग, गृहांग, ज्योतिरांग, मद्यांग, माल्यांग इन दस प्रकार के कल्पवृक्षों से व्यक्तियों के लिये भोग की सामग्री प्राप्त हो जाती थी। वहाँ के प्राकृतिक वातावरण में मच्छर, चोर-लुटेरे-डकैत नहीं होते थे जिससे किसी को भय नहीं रहता था। वहाँ पर रहने वाले तिर्यंच भी वहाँ की मीठी घास खाकर के अपना जीवन व्यतीत करते थे, वे किसी को सताते नहीं थे, मारते नहीं थे, खाते नहीं थे, भयभीत भी नहीं करते थे।

वहाँ के लोग निरोगी होते थे। इस प्रकार उत्तम भोगभूमि के बाद, मध्यम और अंत में जघन्य भोगभूमि समाप्त होती है और कर्मभूमि का प्रारंभ होता है लेकिन हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से ऋषभदेव का जन्म कर्मभूमि के पहले यानि तृतीय भोगभूमि काल में ८४ लाख पूर्व वर्ष ३ वर्ष ८ मास १५ दिन पूर्व हो गया था। हुण्डावसर्पिणी

Scanned with CamScanner

काल जो असंख्यात अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल के व्यतीत होने पर आता है जिसमें कुछ अनहोनी घटनायें घटती है जो अनेक दूसरे नियमों का उल्लंघन कर देती है। हिन्दू सम्प्रदाय में भी इसे कलयुग कहा जाता है जिसका अर्थ है अनहोनी घटनायें घटने लग जाना। जैसे तीर्थंकरों का तृतीय काल में जन्म और मोक्ष होना, तीर्थंकरों के पुत्री का जन्म होना, चक्रवर्ती की पराजय, तीर्थंकरों के ऊपर उपसर्ग होना, ६३ शलाका पुरुषों में एक साथ ३ पद के धारी होना, धर्म का विच्छेद होना आदि। उत्तर पुराण में लिखा है कि जिनके द्वारा धर्म तीर्थ की उत्पत्ति होती है या जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते है वे तीर्थंकर कहलाते है। लेकिन धर्म तीर्थ के संस्थापक कोई भी तीर्थंकर नहीं होते है। वे तो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले होते है। इसलिये जैन धर्म के कोई संस्थापक नहीं है। क्योंकि आदिनाथ के पूर्व अनंतों चौबीसी हुई और उस चौबीसी की परम्परा में हुण्डावसर्पिणी काल में सर्वप्रथम ऋषभदेव का जन्म हुआ। घर-२ में खुशियाँ मनाई गई। लेकिन आदिनाथ के जन्म के पूर्व १४ कुलकर हुये जिन्होंने कर्मभूमि की प्रारंभिक रुपरेखा के विषय में समय-२ पर जनता के लिए मार्गदर्शन दिया। यद्यपि ऋषभदेव कुलकर नहीं थे लेकिन उन्हें कुलकर (मनु) की तरह माना गया। क्योंकि उन्होंने बहुत कुछ विधियाँ प्रजा को बताई थी। ऋषभदेव की आयु ८४ लाख पूर्व वर्ष तथा अवगाहना ५०० धनुष प्रमाण थी शरीर का वर्ण तपाये हुये स्वर्ण की तरह था। बैल उनका चिह्न था। उन्होंने ८३ लाख पूर्व वर्ष तक राज्य का शासन किया था। उनकी दो महारानियाँ नंदा और सुनंदा थी। नंदा के भरत को आदि लेकर १०० पुत्र तथा एक ब्राह्मी नाम की पुत्री थी सुनंदा के बाहुवली तथा सुंदरी नाम की पुत्री थी। ऋषभदेव ने ब्राह्मी को वर्ण विद्या तथा सुंदरी को अंक विद्या सिखाई थी। उन्होंने तीन प्रकार के वर्णों की स्थापना (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) की थी तथा तीनों लोगों को अलग-२ काम सौंपे थे। उनके समय में लोगों को भूख-प्यास सताने लगी क्योंकि कल्पवृक्ष ने फल देना बंद कर दिया था तब प्रजा ने नाभिराय से इसके समाधान के लिये कहा। तब नाभिराय ने कहा-इसका समाधान ऋषभदेव देगें। और ऋषभदेव ने इशारा करके कहा सामने ईक्षु के वृक्ष लगे हुये है उनसे तुम्हारी भूख और प्यास शांत हो जायेगी। तभी से उनके वंश का नाम 'इक्ष्वाकु वंश' पड़ा। ऋषभदेव के दीक्षा लेने के पश्चात् भरत ने राज्य की व्यवस्था संभाली और ६ खंड के अधिपति चक्रवर्ती हुये। पश्चात् उनके नाम से ही इस देश का नाम भारत देश पड़ा। और 'भरत का भारत' इस प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया । बंधुओ ! ऋषभदेव महाराज को नीलांजना की मृत्यु को देख कर वैराग्य हो गया और दीक्षा ले ली। तभी लौकांतिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की प्रशंसा की और सौधर्म इन्द्र ने दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाया। ऋषभदेव के साथ ४००० अन्य राजाओं ने भी दीक्षा ले ली। और ऋषभदेव तो दीक्षा लेते ही ६ माह के लिये ध्यानस्थ हो गये। लेकिन साथ में दीक्षा लेने वाले अन्य राजा कुछ नहीं समझते थे कि यह क्या है ? जब उन्हें भूख-प्यास लगी तो वे आकुल-व्याकुल होने लगे जिससे वे तालाब के पास पहुँचे, तो कोई फल से लदे वृक्षों के पास, तभी आकाश वाणी हुई "यह जैन शासन है इसमें शिथिलाचारी नहीं चलेगी। इसमें किसी प्रकार की स्वेच्छाचारी नहीं चलेगी। यह एक ऐसा पवित्र निर्ग्रंथ वेश है जिसको पाकर साधक मोक्षमार्ग की यात्रा करते है यदि यह संभव न हो सके तो वेश बदल लीजिये लेकिन इस वेश में रहते हुए दो समय भोजन नहीं कर सकते हो, अपने हाथ से कुछ नहीं ले सकते हो।" इस वाणी को सुनकर कुछ लोगों ने वेश चेंज कर लिया और कुछ वैसे ही रहे। लेकिन महामुनि ऋषभदेव ६ माह के बाद आहार को निकले और ७ माह ९ दिन व्यतीत हो गये लेकिन उनकी विधि नहीं मिली। इस प्रकार १३ माह ९ दिन हो गये महामुनि

Scanned with CamScanner

ऋषभदेव का आहार नही हुआ। ऐसा क्यों हुआ कि इतने समय तक आहार नहीं मिला ? शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि जिस समय महाराजा ऋषभदेव ने प्रजा के लिये ६ कर्म की व्यवस्था की थी उस समय कृषिकों ने प्रार्थना की थी - हे भगवन् ! हम जितनी खेती करते है वह जानवर खा जाते है। तब महाराजा ऋषभदेव ने कहा था - जानवरों के मुख में मुसीका बाँधना चाहिये, जिससे वे खा नहीं पायेंगे। इस प्रकार उन्होंने जानवरों को नहीं खाने दिया तो उनको भी खाने नहीं मिला। लेकिन महामुनि ऋषभदेव अपनी चर्या में बराबर निकलते थे और विधि न मिलने से लौट आते थे। यद्यपि तीर्थंकरों के पास इतनी शक्ति व सामर्थ्य होती है कि वे आहार न भी ले तो भी कुछ अंतर नहीं आयेगा। लेकिन अन्य साधुओं के लिये भी उन्हें चर्या को सिखाना था। धीरे-२ वैशाख शुक्ल तृतीया का दिन आ गया उस दिन रात्रि के अंतिम पहर में राजा श्रेयांस के लिये स्वप्न आये जिसमें उन्होंने ऊँचा सुमेरु पर्वत, सुशोभित विशाल कल्पवृक्ष, सिंह, बैल, सूर्य-चन्द्रमा, समुद्र, व्यन्तदेव की मूर्तियाँ ये ७ स्वप्न देखे। उसका फल ज्योतिषि ने बताया कि सुमेरु पर्वत की तरह कोई महापुरुष आपके द्वार पर आयेंगे और कल्पवृक्ष की तरह रत्नों की वर्षा करके चले जायेंगे शेष स्वप्न का फल भी श्रेष्ठ है। जिससे हमेशा-२ के लिये आपका नाम याद रहेगा। और प्रातःकाल होते ही राजा श्रेयांस को समाचार मिला कि महाराजाधिराज ऋषभदेव हस्तिनापुर नगर में प्रवेश कर रहे है। शुभ समाचार सुन राजा श्रेयांस खुश हो गये और मंत्रीयों को उनका राजकीय स्वागत-सम्मान करने का आदेश दे दिया। लेकिन राजा श्रेयांस को बीच-२ में समाचार प्राप्त हुये कि ऋषभदेव तो किसी को देख भी नहीं रहे है, स्वागत भी स्वीकार नहीं कर रहे है, रुक भी नहीं रहे है सीधे राजमार्ग से आगे बढ़ते जा रहे हैं, तभी राजा श्रेयांस और राजा सोमदेव ने देखा कि ऋषभदेव राजमहल के मार्ग से सामने ही चले आ रहे है तभी राजा श्रेयांस और सोमदेव उन्हें आगे आकर देखते है और देखते ही उनको जातिस्मरण हो जाता है कि ओह ! ये तो निर्ग्रंथ मुनिराज है, चलते-फिरते तीर्थ है, सिद्ध सम है। हम अभी तक समझ नहीं पाये थे। जब ये वज्रजंघ चक्रवर्ती की पर्याय में थे और मेरा जीव इनकी पत्नि श्रीमती की पर्याय में था तब हम दोनों ने किन्ही चारण ऋद्धिधारी मुनि को आहार दान दिया था। इस प्रकार स्मरण आते ही राजा श्रेयांस और सोमदेव, ऋषभदेव महामुनि का पड़गाहन कर विधि पूर्वक आहार करवाते है। आहार भी इक्षु रस का ३ अंजली प्रमाण होता है। आहार के पश्चात् पञ्चाश्चर्य होते है। उधर भरत चक्रवर्ती को जैसे ही पता चला कि महामुनि ऋषभदेव का आहार हो गया तो वे पवनञ्जय नामक घोड़े पर सवार होकर अयोध्या से हस्तिनापुर आ गये और राजा श्रेयांस की बड़ी प्रशंसा करते हुये बोले- कि हे श्रेयांस ! चक्रवर्ती से भी अधिक भाग्यशाली आज आप है क्योंकि आपके यहा त्रिभुवनपति, त्रिलोकीनाथ का आहार हुआ है, धन्य है आप। मेरा पुण्य तो आज आपके सामने उसी तरह से फीका पड़ गया है जैसे सूर्य के उदय हो जाने पर चन्द्रमा फीका पड़ जाता है। इस प्रकार प्रशंसा कर भरत अपने स्थान पर चला गया।

बंधुओ ! कहने का तात्पर्य है कि ऐसा जो धर्म तीर्थ और दान तीर्थ है उसकी उत्पत्ति की सारी पद्धति इस अधिकार में बताई गई है जिसे हम सभी पढ़ेगे और समझने का प्रयास करेंगे।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक - १२-११-०९
स्थान - तलोद (गुज.)
वार :- गुरुवार

Scanned with CamScanner

प्रव.२ / श्लोक - २-४

दान से होता यशोगान

- जिस घर में संतों के चरण नहीं पड़ते है वह घर श्मशान भूमि की तरह है। और श्मशान भूमि का तात्पर्य है जहाँ मृतक के शरीर को जलाया जाता है ऐसा अपवित्र स्थान।
- जिस व्यक्ति के घर में संतों के चरण पड़ जाते है उस व्यक्ति के यशोगान गाये जाते है।

बंधुओ ! कल आचार्य पद्मनंदि महाराज ने इस बात का संकेत दिया था कि दान तीर्थ और धर्म तीर्थ ये दो प्रकार के तीर्थ होते हैं। धर्म तीर्थ का दूसरा नाम व्रत तीर्थ और अन्य ग्रंथों में चारित्र तीर्थ इस नाम से भी कहा गया है। धर्म तीर्थ का प्रवर्तन भगवान ऋषभदेव ने किया तो दानतीर्थ का प्रवर्तन महाराजा श्रेयांस ने किया था। क्योंकि १३ माह ९ दिन बाद राजा श्रेयांस के यहाँ महामुनि ऋषभदेव की विधि मिली थी और उस विधि की जानकारी राजा श्रेयांस को स्वप्न के आधार पर जाति स्मरण के द्वारा हुई थी और उन्होंने सत् पात्र के प्रति नवधाभक्ति करके निर्विघ्न आहार कराये थे। इसी के विषय में आगे आचार्य महाराज कह रहे है -

श्रेयोभिधस्य नृपतेः शरदभ्रशुभ्रभ्राम्यद्यशोभृतजगत्त्रियतयस्य तस्य ।
किं वर्णयामि ननुसद्मनि यस्य भुक्तं त्रैलोक्यवन्दितपदेन जिनेश्वरेण ॥२॥

अर्थ - जिस श्रेयांस राजा के गृह पर तीनों लोकों से वंदित चरणों वाले भगवान ऋषभदेव ने आहार ग्रहण किया था और इसलिये जिसका शरत्कालीन मेघों के समान धवल यश तीनों लोकों में फैला, उस श्रेयान् राजा का कितना वर्णन किया जाय ?

बंधुओ ! जब भगवान ऋषभदेव को उपवास के ६ माह के बाद ७ माह ९ दिन हो गये लेकिन उनकी विधि नहीं मिली, आहार नहीं हुआ तो सारे राज्य परिवार में ही क्या सारे देश में सन्नाटा छा गया था, सारे देश में शांति छा गई थी। हर भव्य और भक्तों के चेहरे मुकुलित थे सभी चिंतित थे। क्योंकि कोई कुछ जानते नहीं थे। जिससे सबके मन में एक प्रश्न बार-२ आ रहा था कि ऋषभदेव आहार क्यों नहीं कर रहे है ? इतने प्रकार के प्रयास करने पर भी किसी राजा को सफलता क्यों नहीं मिल पा रही है ? और जैसे ही विधि मिली तो राजा श्रेयांस के लिये आनंद आ गया। और राजा श्रेयांस के लिये नहीं चारों ओर भक्तों में आनंद छा गया और ऐसा आनंद छाया जैसे किसी गरीब को 'चिंतामणी' रत्न मिल गया हो। जैसे-काले-२ पानी से भरे बादलों को देखकर श्रावण माह में मयूर नाच उठता है, आनंद विभोर हो जाता हैं ठीक उसी प्रकार से विधि के मिलने से भव्य प्राणियों के मनरुपी मयूर नाच उठे। और घर-२ में आनंद के साथ एक ही चर्चा होती कि महामुनि ऋषभदेव की विधि मिल गई। और महाराजा श्रेयांस तथा सोमदेव ने उन महामुनि को पड़गाह कर भक्ति से आहार कराया है।

Scanned with CamScanner

बंधुओ ! जिस समय संत आहार को निकलते है उस समय कितने भव्य प्राणियों के हृदय और प्यासे नेत्र इस बात के लिये प्रेरित करते है कि महाराज हमारे यहाँ आहार ले ले। हर चौके महाराजों की इंतजारी करते है। यह दिगम्बर संतों की महिमा है। संत कभी किसी से कुछ माँगते नहीं है, किसी से कुछ कहते नहीं है कि मुझे आहार दीजिये या चौका लगा लीजिये, अमुक सामग्री बना कर दे दीजिये और तो क्या, यदि कोई उनके पास आकर कह दे महाराज हमारे चौके में आ जाना तो महाराज उस चौके में तीन दिन तक नहीं जाते क्योंकि वे निमंत्रण के त्यागी होते है। यदि कोई व्यक्ति कह दे कि अमुक सामग्री हमने आपके लिये ही बनाई है तो उस सामग्री को भी वे नहीं लेते है। इस कारण से वे संत है, महामुनि है। संत एक मात्र अपनी वीर चर्या के माध्यम से / आहार की मुद्रा के माध्यम से श्रावकों को जानकारी देते है और श्रावक उस मुद्रा को देख कर समझ जाते है कि महाराज आहार के लिये आ रहे है। संत जब आहार चर्या को निकलते है तो इतना पवित्र-पावन विचार कर निकलते है कि मैं इस शरीर से धर्म साधना करता हूँ और उसके बदले इसे मेहनताना (वेतन) देने जा रहा हूँ। जैसे आप अपने घर में काम करने वाले नौकरों को वेतन देते है। आप उसे १ महीने में देते है संत उसे प्रतिदिन देते है कोई दो दिन में, कोई तीन में तो कोई इससे अधिक समय में देते है क्योंकि इस शरीर से साधना करना है। इसलिये शास्त्रों में कहा है कि साधुजन वास्तविकता में आहार नहीं लेते, आहार लेना अच्छा भी नहीं मानते लेकिन लेना पड़ता है। लेना इसलिये पड़ता है कि साधना करना है और साधना, बिना शरीर के संभव नहीं होती। और शरीर आहार के बिना टिक नहीं सकता हैं। भगवान ऋषभदेव यद्यपि इस बात के लिये समर्थ थे कि वे आहार नहीं लेते तो भी वे आराम से अपनी साधना कर सकते थे लेकिन इस बात के लिये जानते थे कि आने वाला जो समय होगा उस समय में हर व्यक्ति वज्रवृषभ नाराच सहनंन के धारी नहीं होंगे, हीन सहनंन के धारी होंगे। इसलिये करुणामूर्ति ऋषभदेव दूरगामी थे और आहार चर्या के लिये निकले।

पूज्य आचार्य महाराज कहते है कि व्यक्ति का जैसा मन होता है प्रायः उसका चेहरा भी वैसा ही होता है। English में भी कहा गया है I-Face in the index of the heart चेहरा व्यक्ति के हृदय को बतलाता है। अर्थात् व्यक्ति के चेहरे से उसके हृदय या मन को पढ़ा जा सकता है कि व्यक्ति का मन कैसा है ? यदि मन प्रसन्न है तो चेहरे पर प्रसन्नता आ जाती है और यदि कोई चिंता है तो चेहरा संकेत देता है कि व्यक्ति के अंदर कोई चिंता है। इसी प्रकार संत जब किसी मकान के सामने से निकलते है तो प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर आनंद की लहर उमड़ आती है लेकिन जब वे मकान के सामने से निकल जाते है तो चेहरा मुकुलित हो जाता है जैसे महामुनि महावीर स्वामी जब आहार को निकले और चंदनबाला के सम्मुख पहुँचे तो चंदनबाला गद्गद् हो गई और बड़ी प्रसन्नता के साथ पड़गाहन करने लगी। लेकिन महामुनि का अविग्रह न मिलने से वे आगे निकल गये तो चंदनबाला दुखी हो गई। बस यही अवस्था महामुनि ऋषभदेव के समक्ष थी। लेकिन राजा श्रेयांस व सोमदेव ने पड़गाहन करने के बाद इस बात का ध्यान रखा कि महामुनि है कही लौट न जाये, इसलिये बहुत सावधानी रखी। जमीन को देखकर चले कि कहीं अशुद्धता पर पैर न रख जाये, किसी कपड़े, धागे, मरे जीव जन्तु, नाली के अशुद्ध पानी पर पैर न रख जाये क्योंकि साधु शुद्धि मात्र

Scanned with CamScanner

बुलवाते ही नहीं है अपितु ध्यान भी रखते है कि इसकी शुद्धि है या नहीं और यदि अशुद्धि देखते है तो लौट जाते है। इस प्रकार राजा श्रेयांस और सोमदेव ने मुनि की तरह ईर्या समिति.. का पालन करते हुये परिक्रमा लगा कर मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्धि" के साथ भोजन शाला में प्रवेश कराया। पश्चात् उन्हें उच्चासन पर बैठने के लिये प्रार्थना की, कि हे भगवन्! उच्चासन ग्रहण कीजिये और फिर पाद प्रक्षालन, पूजा करके उनका नरंतराय आहार कराया। बंधुओ! यहाँ आचार्य महाराज ने संतों के आहार की विशेपता बतलाई है कि जिसके घर में संतों का आहार होता है उसका यशोगान गाया जाता है इसी प्रकार राजाश्रेयांस व सोमदेव का भी तीनों लोकों में यशोगान गाया जा रहा था, हर तरह से धन्यवाद दिया जा रहा था, कि हे श्रेयांस! धन्य हो तुम! बड़े भाग्यशाली हो तुम! धन्य है तुम्हारा घर! अब तुम्हारा घर, घर नहीं मंदिर बन गया है, पावन हो गया है, पवित्र हो गया है। आचार्य कुंदकुंद देव ने भी रयणसार में कहा-कि **जिस घर में संतों के चरण नहीं पड़ते है वह घर श्मशान भूमि की तरह है। और श्मशान भूमि का तात्पर्य है जहाँ मृतक के शरीर को जलाया जाता है ऐसा अपवित्र स्थान।** इसलिये संत किसी के घर में बिना कारण नहीं जाते है मात्र आहार के समय ही जाते है यह राजमार्ग है। यह बात अलग है कि यदि किसी के यहाँ ऐसी अपरिहार्य स्थिति आ जाये कि किसी का स्वास्थ्य बिगड़ जाये और सल्लेखना समाधि की अवस्था आ जाये और वह आने में असमर्थ हो तो उनको संबोधन देने के लिये संत जन घर में जाते है। लेकिन अनिवार्य नहीं है जा भी सकते है और नहीं भी जा सकते है। इसलिये सदैव अपने घर में चौका-लगाकर घर को पवित्र करना चाहिये।

बंधुओ! इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं **जिस व्यक्ति के घर में संतों के चरण पड़ जाते है उस व्यक्ति के यशोगान गाये जाते है।**

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है-

श्रेयान् नृपो जयति यस्य गृहे तदा खादेकाद्यवन्द्यमुनिपुंगवपारणायम्।
सा रत्नवृष्टिरभवज्जगदेक चित्रहेतुर्यया वसुमतीत्वमिता धरित्री ॥३॥

अर्थ - जिस श्रेयान् राजा के घर पर इन्द्रादिकों से वंदनीय एक प्रथम मुनिपुंगव के पारणा करने पर उस समय लोक को अभूतपूर्व आश्चर्य में डालने वाली आकाश से वह रत्नवृष्टि हुई कि जिसके द्वारा यह पृथिवी 'वसुमती (धनवाली)' इस सार्थक संज्ञा को प्राप्त हुई थी; वह राजा श्रेयान् जयवंत होवे।

बंधुओ! यह सत्य है जिसके घर में तीर्थंकर के आहार होते है उसके घर में पंचाश्चर्य होते है यह राजा श्रेयांस के द्वारा दिये गये आहार की विशेषता है। ये पंचाश्चर्य देवतागण करते है। जिसमें पहला आश्चर्य रत्नों की वृष्टि होना और वे रत्न इतनी अधिक मात्रा में वर्षे क्योंकि महामुनि ऋषभदेव का १३ माह ९ दिन के बाद आहार हो रहा था, की सारी पृथ्वी रत्नों से भर गई। और उसका वसुमति (धनवाली) यह नाम सार्थक हो गया। इस कारण से आचार्य भगवन् कहते है कि धन्य है वह राजा श्रेयांस जो सदैव जयवंत रहे। दूसरा आश्चर्य दुंदुभीवादन (३) जय-

Scanned with CamScanner

जय शब्द का प्रसार (४) सुगंधित वायु का संचार (५) पुष्पों की वर्षा होना। आगे आचार्य महाराज इसी बात के लिये पुनः कहते है।

प्राप्तेऽपि दुर्लभतरेऽपि मनुष्यभावे स्वप्नेन्द्रजालसदृशेऽपि हि जीवितादौ।
ये लोभकूप कुहरे पतिताः प्रवक्ष्ये कारुण्यतः खलु तदुद्धरणाय किंचित् ॥४॥

अर्थ - जो मनुष्य पर्याय अतिशय दुर्लभ है उसके प्राप्त हो जाने पर भी तथा जीवित आदि के स्वप्न और इन्द्र जाल के सदृश विनश्वर होने पर भी जो प्राणी लोभरुप अंधकार युक्त कुएँ में पड़े हुए हैं उनके उद्धार के लिये दयालु बुद्धि से यहाँ कुछ दान का वर्णन किया जाता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है कि मनुष्य पर्याय जो अत्यन्त दुर्लभ पर्याय है उसके प्राप्त हो जाने पर तथा जीवन स्वप्न की तरह क्षण भंगुर है, नष्ट होने वाला है। जिस प्रकार कोई स्वप्न में बड़े-बड़े राज्य पाट को प्राप्त कर लेता है। लेकिन नींद खुलने के बाद उसे कुछ भी नहीं दिखता। कुछ भी नहीं मिलता। क्योंकि स्वप्न में प्राप्त वैभव क्षणिक होता। इसी प्रकार आचार्य महाराज ने दूसरा उदाहरण दिया कि आकाश में पाँच रंग का इन्द्रधनुष कुछ क्षण के लिये दिखाई देता है इसके उपरांत विलीन हो जाता है, समाप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य जीवन नाशवान है, क्षणभंगुर है, हमेशा रहने वाला नहीं है। क्योंकि आजतक कोई भी मनुष्य इस मनुष्य लोक में शाश्वत नहीं रहा। जो जन्मा है उसे नियम से मरना पड़ा चाहे राजा हो या रंक। भूधरदासजी की बारह भावना में भी पढ़ते है

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार। मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ॥१॥

अर्थात् ऐसी विनश्वर मनुष्य जीवन को पाकर भी जो मनुष्य लोभ रुपी कुये में गिरा है ऐसे लोभ रुपी अंधकार युक्त कुएँ में पड़े हुए प्राणि के उद्धार के लिए / कल्याण के लिए महामुनि ऋषभदेव आहार को निकले थे। इसका अर्थ है कि सत्पात्र दान के द्वारा व्यक्ति का लोभ छूटे। व्यक्ति का लोभ कुछ न कुछ कम हो। क्योंकि लोभी व्यक्ति कभी भी दान नहीं दे सकता है इसलिये संत आहार को निकलते है।

बंधुओ ! आहार दान इस बात का संकेत है कि अमुक व्यक्ति लोभी नहीं है उसने लोभ का त्याग कर दिया है। लोभ भी दो प्रकार का होता है एक जीवन का लोभ दूसरा धर्म का लोभ। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते है जिनको धन का लोभ होता है वे हिसाब-किताब लगाते है कि चौका लगायेगे तो इतना खर्च होगा, इतना बेकार जायेगा, इतना सारा धन समाप्त हो जायेगा ?

ऐसा सोचकर वे चौका नहीं लगाते है। इसी प्रकार जीवन का लोभ करने वाले सोचते है कि कौन मेहनत करें, कितनी ठंडी पड़ रही है, कौन सामग्री तैयार करें, कौन ठंडी में नहायें ? ऐसे लोग पैसा दान करने को तैयार हो जाते है लेकिन चौका नहीं लगा पाते। एक बार आचार्य धर्म सागर जी महाराज के पास एक भक्त पहुँचा और उसने कहा- महाराज, आहार दान के लिये कुछ पैसे देना चाहते है। महाराज ने कहा-आहार के योग्य वस्तु का दान तो हो सकता

है उसे खाया जा सकता है लेकिन पैसे नहीं खाये जा सकते है इसलिये पैसे का दान नहीं हो सकता है। तुम्हें दान करना है तो चौका लगाइये। मेहनत कीजिये यही श्रावक की सबसे बड़ी तपस्या है।

आचार्य समन्तभद्र महाराज भी कहते है कि गृहस्थ जीवन में मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करते है जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ। और उन पापों को दूर करने के लिये कोई न कोई तरीका होना चाहिए। वह तरीका है भगवान की पूजा और गुरुओं को आहार दान देना। लेकिन आचार्य महाराज ने इस ग्रंथ में आहारदान को सबसे पहले कहा है और पूजा को उसके बाद कहा। क्योंकि दान में तपस्या सबसे अधिक होती है। जब व्यक्ति चौका लगाता है तो उसे दो-तीन दिन पहले से सोचना पड़ता है, सामग्री तैयार करनी पड़ती है, सोले के कपड़े रखना, चौके के स्थान की शुद्धि करना, चंदोवा लगाना, पानी वगैरह सोले में लाना आदि। इसलिये आचार्य समंतभद्र महाराज रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं -

गृहकर्मणापि निचितं, कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

जैसे खून से रंग हुये कपड़ों को पानी धो देता है उसी प्रकार से गृहस्थ कर्म के द्वारा उपार्जित पापों को आहार दान धो देता है, समाप्त कर देता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है उनकी आज्ञा है। हम इस सत्य को समझते हुये अपने जीवन में कभी भी कोई भी त्यागी-व्रती आये आराम से उनके लिए आहार कराये और अपने जीवन को सौभाग्यशाली माने। यही हमारे मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक - १३-११-०९
स्थान-तलोद (गुज.)
दिन-शुक्रवार

Scanned with CamScanner

प्र.व. ३ / श्लोक - ५-८

उत्कृष्ट दान-गुणों में प्रधान

◆ दानादि अच्छे कार्यों में लगाया हुआ थोड़ा सा भी धन कालान्तर में अपूर्व ही फल को प्रदान करने वाला होता है। जैसे वट वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है यदि उसे योग्य जमीन में बोया जाये तो कालान्तर में वह विशाल वृक्ष के रूप में फलीभूत होता है।

बंधुओ ! यहाँ पर आचार्य पद्मनंदि महाराज ने पूर्व की गाथा में बताया है कि गृहस्थ जीवन विभिन्न प्रकार के पापों को संचय करने वाला जीवन है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव घर में नहीं रहना चाहता है लेकिन उसे रहना पड़ता है और मिथ्यादृष्टि जीव जो घर में रहकर आनंद मनाता है। भरत चक्रवर्ती अपने राज्य परिवार का संचालन करते थे फिर भी उन्हें घर में वैरागी कहा जाता था क्योंकि वे निरन्तर वैराग्य के पथ की भावना करते थे। लेकिन आचार्य महाराज कहते है जब तक घर का त्याग नहीं किया है तब तक पापों से बचना बहुत कठिन है क्योंकि कुछ काम ऐसे होते है जिसमें सहज मात्रा में पाप होते है जैसे भोजन बनाना, कपड़े धोना, झाड़ू लगाना, पानी छानना, दुकान करना, खेती करना, पाप करना, कषायें करना, राग-द्वेष करना आदि जिनसे निरन्तर पापों का संचय होता है और उन पापों को धोने का तरीका क्या है ? इसके विषय में आचार्य महाराज कह रहे है-

कान्तात्मजद्रविणमुख्यपदार्थसार्थप्रोत्थातिघोर घनमोहमहासमुद्रे ।
प्रोतायते गृहिणि सर्वगुणाधिकत्वाद्दानं परं परमसात्त्विक भावयुक्तम् ॥५॥

अर्थ - जो गृहस्थ जीवन स्त्री, पुत्र एवं धन आदि पदार्थों के समूह से उत्पन्न अत्यन्तर भयानक व विस्तृत मोह के विशाल समुद्र के समान है उस गृहस्थ जीवन में उत्तम सात्त्विक भाव से दिया गया उत्कृष्ट दान समस्त गुणों में श्रेष्ठ होने से नौका का काम करता है।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे है कि कुटुम्ब-परिवार, धन-दौलत में बना हुआ व्यक्ति का मोह राग रूपी समुद्र संसार में घुमाने वाला है, डुबाने वाला है, रुलाने वाला है, पतन करने वाला है। व्यक्ति कितनी भी तत्त्व चर्चा कर ले लेकिन जब तक मोह नहीं छूटता तब तक तत्त्व चर्चा सार्थक नहीं है। इसलिये ज्ञान वह जो हमारे काम में आये और जो काम में न आये वह ज्ञान नहीं। तथा हमें इस बात का भी महसूस होना चाहिये कि घरगृहस्थी का मोह संसार में रुलाने वाला है। भरत चक्रवर्ती जब आत्म चिंतन में डूबते थे तो ऐसा ही विचार करते थे कि गृहस्थ जीवन संसार का जीवन है, पाप का जीवन है, बाह्यजीवन है, शरीर का जीवन है, आत्मा एवं मोक्षमार्ग के प्रतिकूलता का जीवन है, ये मेरा वास्तविक मार्ग नहीं है वास्तविक मार्ग तो मुनि धर्म है और वह भी बाह्यसंयम से नहीं, बल्कि बाह्यसंयम के साथ-२ अंतरंग संयम से सफल है। बाह्य व्रताचरण करने से ही मात्र संतों का जीवन पवित्र नहीं है किन्तु अंतरंग में जो आत्माचरण है उससे योगी का जीवन पवित्र है। वे योगीजन आत्मस्वरुप का चिंतन करते है इसलिये संवर और निर्जरा उनके जीवन में प्रतिक्षण चलती रहती है इसलिये चलते-फिरते मोक्षमार्ग मुनिजन है। भरत जब इस चिंतन में डूबते थे तो उनकी आंखों में आँसू भर आते थे कि धिक्कार हो मुझे। वह दिन कब आ जाये जब

Scanned with CamScanner

मैं सब कुछ त्याग कर आत्म साधना में लीन हो जाऊँ। पुराने विद्वानों ने मेरी अभिलाषा की पंक्तियों में कहा है-

संत साधु बनके विचरूँ वह घड़ी कब आयेगी।

अर्थात् वह दिन कब आयेगा जब मैं संत बनकर वन में विचरण करूँगा। लेकिन यह सबके लिये संभव नहीं। एक बार किसी व्यक्ति से हमने कहा-भईया घर छोड़ देना चाहिये। उन्होंने कहा-सब घर छोड़ देगें तो आहार कौन देगा? मैंने कहा-जो संत बन जाते वे आहार की चिंता नहीं करते। यदि भाग्य में होगा तो जंगल में भी आहार मिलेगा और भाग्य में नहीं होगा तो महलों में भी नहीं मिलेगा। साधु आहार के लिये नहीं बना जाता इसलिये आहार की चिंता मत करो। उन्होंने कहा-सही है साधु आहार की चिंता नहीं करते और न आहार के लिये साधु बना जाता है। मैंने कहा-साधु तो साधना के लिये बना जाता है इसलिये वे साधु कहलाते है और यदि आहार के लिये दीक्षा ली जाये तो वे साधु नहीं स्वादु हो जायेंगे। जो स्वाद ले वह स्वादु और जो साधना करें वह साधु है।

बंधुओ! इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे है कि गृहस्थिक लोगों को उस संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये जो नाव है वह परम सात्त्विक भाव से युक्त दान है। सात्त्विक शब्द का अर्थ है सहज भाव से दिया गया दान, पवित्र परिणामों से दिया गया दान। क्योंकि राजसिक दान, तामसिक दान, और सात्त्विक दान के भेद से दान तीन प्रकार का है।

बंधुओ! जब हम कहीं रास्ते से निकलते है तो आम जनता में एक प्रश्न खड़ा रहता है कि आखिर में इनके महाराज श्रावको को कौन सा मंत्र या विद्या देते है कि इतने सारे लोग पड़गाहन में खड़े रहते है? और शास्त्रों में इसकी महिमा क्यों गायी गई है? मैंने कहा-संत न कोई मंत्र देते है न कोई विद्या और न धन देते है न कोई दौलत। उन्होंने कहा- फिर ऐसी भीड़ क्यों लगी रहती है आहार देने वालों व देखने वालों की? मैंने कहा-इसका मुख्य कारण है कि संत हमारे थोड़े से आहार को लेकर रत्नत्रय की अच्छी साधना करें और साधना के साथ-२ हम सभी के लिये भी मोक्षमार्ग व धर्म के दो शब्द दें। इसलिये जैन दर्शन में दान का बहुत महत्व माना गया है। तथा सात्त्विक दान में बाजार की सामग्री नहीं चलती बल्कि जो पवित्र सामग्री आप अपने घर में अपने लिये तैयार कर रहे है ऐसी शुद्ध सामग्री संतों को आहार में दी जाती है। और आचार्य महाराज ने यहाँ सामग्री के लिये ही सात्त्विक नहीं कहा अपितु भावों के लिये भी सात्त्विक भाव कहा। इसलिये आहार देते समय सात्त्विक भाव होना चाहिये अन्य कोई लौकिक भाव नहीं होना चाहिये कि कोई हमारी प्रशंसा करें या हमारे यहाँ छोटे महाराज आये बड़े नहीं, आर्यिका ही आयी महाराज नहीं आये, क्षुल्लक-क्षुल्लिका ही आये है अन्य कोई नहीं ऐसा विचार नहीं होना चाहिए। क्यों? क्योंकि दान तो दान है वह सत्पात्रों के लिये दिया जा रहा है और जो सत्पात्रों को दिया जाने वाला दान है वह सम्यक्दान कहलाता है वह मोक्षमार्ग में हेतु बनता है इसलिये आचार्य भगवन् कहते है सात्त्विक भाव रखिये, जो आया उसमें संतोष रखिये क्योंकि ऐसे भावों से गृहस्थ के द्वारा दिया गया दान जो सभी प्रकार के गुणों की अधिकता होने से या विभिन्न गुणों से युक्त होने के कारण पोत के समान है वह संसार से पार करने वाला है।

आगे पुनः आचार्य महाराज इसी बात को कहते है-

नानाजनाश्रित परिग्रह संभृतायाः सत्पात्रदानविधिरेव गृहस्थतायाः।
हेतुः परः शुभगतेर्विषमें भवेऽस्मिन् नावः समुद्र इव कर्मठकर्णधारः ॥६॥

Scanned with CamScanner

अर्थ – इस विषम संसार में नाना कुटुम्बीजनों के आश्रित परिग्रह से परिपूर्ण ऐसी गृहस्थ अवस्था के शुभ प्रवर्तन का उत्कृष्ट कारण एक मात्र सत्पात्र दान की विधि ही है, जैसे समुद्र से पार होने के लिये चतुर खेवट (मल्लाह) से संचालित नाव कारण है।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे है कि ऐसा गृहस्थिक जीवन जो अनेक कुटुम्बी जनों के आश्रित हैं और जो अंतरंग व बहिरंग परिग्रह से भरा है ऐसे जीवन में परिवार के मोह के कारण और परिग्रह की आसक्ति के कारण व्यक्तियों के अंदर अशुभयोग और अशुभ उपयोग बना रहता है उनका धर्म में बहुत कम मन लगता है जिससे निरन्तर पापास्रव होता है। यदि पुण्य के उदय से कोई भगवान के दर्शन-पूजन, स्वाध्याय, गुरुओं की सेवा करने लग जाये तो भी व्यक्ति का मोह नहीं छूटता। हमको ऐसा लगता है कि हमने एक घंटे भगवान की पूजा, भक्ति, स्वाध्याय, जाप किया। लेकिन आचार्य कहते है कि यह तुम्हारा भ्रम है सत्य बतलाओं कि एक घंटे मंदिर में रहने के उपरांत तुम्हारा उपयोग कितनी बार अन्य कार्यो में चला गया ? तो सत्य यह है कि अनेक बार चला गया। आपका उपयोग कितने समय पुण्य कार्य में लगा ? तो बहुत कम समय लगा। हम णमोकार मंत्र की १०८ दाने की माला पूरी कर लेते है लेकिन सत्य बतलाओं आपके मन ने कितनी जाप की ? कितने बार णमोकार मंत्र पढ़ा ? तो सत्य यह है कि कुछ ही दानों में मन से भगवान का स्मरण किया होगा। इसी प्रकार हमने शास्त्रों के ५ या १० पन्ने पढ़ लिये लेकिन आपके मन ने कितना पढ़ा ? तो बहुत कम पढ़ा है। लेकिन हमको ऐसा लगता है कि हम बहुत धर्म ध्यान करते है परन्तु आचार्य भगवन् कहते है कि यह तुम्हारा भ्रम-भ्रांति है सत्य तो यह है कि सब कुछ करने पर भी बहुत कम प्रतिशत आता है बाकी यहाँ-वहाँ के विकल्पों में चला जाता है। जैसे दूध में से घी निकाला जाये तो घी का प्रतिशत बहुत कम आता है। इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे है ऐसे गृहस्थिक जीवन में शुभ प्रवृत्ति का प्रधान कारण एक मात्र सत्पात्र को दान देने की विधि ही है। पात्र-सत्पात्र, अपात्र और कुपात्र के भेद से तीन प्रकार के है। जिसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र यह रत्नत्रय पाया जाता है अथवा रत्नत्रय में से एक भी रत्न जिसमें पाया जाता है वह सत्पात्र कहलाता है और सत्पात्र के भी उत्तम, मध्यम तथा जघन्य ये तीन भेद हैं जिसमें उत्तम पात्र मुनि है क्योंकि उन्होंने सम्यग्दर्शन के साथ महाव्रतों को धारण किया है। मध्यम पात्र देशव्रती है क्यों कि उन्होंने सम्यग्दर्शन के साथ एक देशरुप व्रतों को धारण किया है। और जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि ४ गुणस्थानवर्ती श्रावक है क्योंकि वह सम्यग्दर्शन से सहित है लेकिन व्रतों से रहित हैं। तथा जो अंदर में व्रतों से सहित है लेकिन सम्यक्त्व से रहित है वह कुपात्र है मिथ्यादृष्टि है और जिसके पास न व्रत है न सम्यक्त्व है वह अपात्र है।

बंधुओ ! आज बहुत सारे लोग लौकिक कार्य को धर्म मान लेते है जैसे दीन-दुखी जीवों को भोजन कराना इसके लिये हमारे यहाँ दयावृत्ति कहा गया है अर्थात् करुणा व दया से भीगकर दीन-दुखी जीवों को भोजन कराना दयावृत्ति है। हाँ, यह मिथ्यात्व दान भी नहीं है लेकिन इसे पात्र दान मानना भी भ्रम है क्योंकि अपात्र है। इसी प्रकार कुत्ता, पशु-पक्षी आदि को भोजन कराना भी दयावृत्ति है। ऐसा क्यों ? तो आचार्य महाराज कहते है इसका कारण यह है कि पात्र तो मोक्षमार्ग में स्थित है और हमारे लिये मोक्षमार्ग की प्रेरणा देता है शिक्षा व निर्देशन देता है इसलिये पात्र दान मोक्षमार्ग में प्रयोजन भूत है अन्य नहीं क्योंकि वे मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है तथा मोक्षमार्ग की शिक्षा भी नहीं देते इसलिये वे पात्र भी नहीं है। इसलिये मात्र सत्पात्र को दान देने की विधि ही श्रेष्ठ है। जो संसार रुपी समुद्र से पार होने के लिये एक कुशल खेवटिया की तरह है जो जीवनरुपी नाव को संसार से पार कर देता है।

Scanned with CamScanner

आगे आचार्य महाराज पुनः कह रहे है

आयासकोटिभिरुपार्जितमङ्गजेभ्यो यज्जीवितादपि निजाद्दयितं जनानाम् ।
वित्तस्य तस्य सगतिः खलु दानमेकमन्या विपत्तय इति प्रवदन्ति सन्तः ॥७॥

अर्थ - करोड़ों परिश्रमों से संचित किया हुआ जो धन प्राणियों को, पुत्रों और अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रतीत होता है उसका सदुपयोग केवल दान देने में ही होता है, इसके विरुद्ध दुर्व्यसनादि में उसका उपयोग करने से प्राणी को अनेक कष्ट ही भोगने पड़ते हैं, ऐसा साधु जनों का कहना है।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे है कि धन जो बिना परिश्रम के नहीं कमाया जाता है। धन कमाने के लिये पसीना सिर से पैर तक बहाया जाता है, खून पसीना एक किया जाता है तब धन आता है। धन कमाने के लिये चाहे गर्मी हो, ठंड़ी हो, बरसात हो कुछ भी नहीं गिनता। भूखा हो, प्यासा हो, स्वास्थ्य ठीक हो या नहीं वह पैसा कमाने के लिये सब कुछ करने के लिये तैयार हो जाता है। कभी-२ तो यहाँ तक देखा जाता है कि प्राण देकर भी व्यक्ति धन प्राप्त करता है अथवा आज के समय में व्यक्ति के लिये प्राणों की कीमत नही धन की कीमत है वह धन को प्राणों से भी अधिक कीमती मानता है ऐसे धन के लिये सुभाषितकारों ने १०वाँ ग्रह माना है जिसका नाम है परिग्रह। इसे ११ वाँ प्राण भी कहा गया है। ऐसा जो धन है वह अपने प्राणों और पुत्रों से अधिक प्रिय होता है क्योंकि पुत्रों को भी दिये गये धन का भरोसा नहीं कि वे इसका उपयोग कैसे करेगें ? हो सकता वे इसका प्रयोग सांसारिक कार्यो में करें, पाप कार्यो में करे तो वह सारा ऐसे ही बर्बाद हो जायेगा और वह धन नियम से पापकर्मो के आस्रव का कारण बनेगा।

इसलिये आचार्य महाराज कहते है कि बुद्धिमान श्रावकों को चाहिये कि वे धन का सदुपयोग दान कार्यो में करें क्योंकि धन का सदुपयोग दान कार्यो में ही होता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आप सब कुछ देकर बैठ जाये। नहीं, उसकी भी विधि है कि यदि श्रावक मुनि बनने में समर्थ है तो उसे सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर देना चाहिये और यदि समर्थ नहीं है तो धन का सदुपयोग सत्पात्र के दान में करना चाहिये साथ ही मंदिर-निर्माण, जिर्णोद्धार, तीर्थ वंदना, शास्त्र सेवा, गरीबों के उपकार में करना चाहिये।

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है

भुक्त्यादिभिः प्रतिदिनं गृहिणो न सम्यङ्नष्टा रमापि पुनरेति कदाचिदत्र ।
सत्पात्र दान विधिना तु गताप्युदेति क्षेत्रस्थ बीजमिव कोटिगुणं वटस्य ॥८॥

अर्थ - लोक में प्रतिदिन भोजन आदि के द्वारा नाश को प्राप्त हुई गृहस्थ की लक्ष्मी (सम्पत्ति) यहाँ फिर से कभी भी प्राप्त नहीं होती। किंतु उत्तम पात्रों के लिये दिये गये दान की विधि से व्यय को प्राप्त हुई वही सम्पत्ति फिर से प्राप्त हो जाती है। जैसे कि उत्तम भूमि में बोया हुआ वट वृक्ष का बीज करोड़ गुणा फल देता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज यहाँ कह रहे है कि दान देने से धन समाप्त नहीं होता है। अपितु दान करने से धन बढ़ता ही है। यह हमारा भ्रम है कि दान करने से धन कम होता है इसलिये कहा गया है कि-

धनवानों अगर मंजूर है, धन की रक्षा तो बनो दानी ।
कुएँ से जब तक न निकलेगा, तो सड़ जायेगा पानी ॥

Scanned with CamScanner

अर्थात् कुयें से जब हम पानी निकालते है तो ऐसा लगता है कि कुआँ छोटा और लोग चारों तरफ से पानी खींच रहे है, साथ में पानी निकालने के लिये मशीन भी लगा दी है तो पानी कम हो जायेगा लेकिन ऐसा नहीं होता बल्कि जितना पानी रहता है उतना ही रहता है। ठीक इसी प्रकार से भोजन आदि में व्यय हुई लक्ष्मी कभी घटती नहीं है अर्थात् व्यक्ति का जितना पुण्य होता है उतनी ही रहती है वृद्धि को प्राप्त नहीं होती। लेकिन पुण्य से प्राप्त लक्ष्मी को पुण्य कार्य में, धार्मिक कार्य में, दान आदि कार्य में लगा दिया जाये तो वह वृद्धि को प्राप्त होता है। वैराग्य भावना में भी कहा है-**बीज राख फल भौगवे, ज्यों किसान जग माहिं ॥१॥**

जैसे किसान बीज को सुरक्षित रखने के उपरांत शेष फसल (धान्य) का उपभोग कर लेता है। व्यापारी भी जब व्यापार करता है तो मूलधन को सुरक्षित रखकर शेष धन को अन्य कार्यों में उपयोग करता है तभी वह कुशल किसान तथा व्यापारी कहलाता है इसी प्रकार श्रावक मूल को रख कर शेष धन का धार्मिक कार्य में उपयोग करता हैं। लेकिन जो मूल को खाकर बैठ जाता है उसे कालान्तर में पछताना पड़ता है। दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है कि मुझको कुछ धन या बीज दे दीजिये जिसमें मैं अपना कार्य कर सकूँ। फिर भी भरोसा नहीं कि कोई देगा या नहीं देगा। इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे है कि आज जो तुम्हारे पास है वह सब बासा ही है यह सब आपका पुराना पुण्य काम कर रहा है और आज तुम कुछ नहीं करोगे तो कालान्तर में तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा पछताना पड़ेगा। लेकिन जो सत्पात्रों को दान देता रहता है उसे कभी पछताना नहीं पड़ता है क्योंकि **दानादि अच्छे कार्यों में लगाया हुआ थोड़ा सा भी धन कालान्तर में अपूर्व ही फल को प्रदान करने वाला होता है। जैसे वट वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है यदि उसे योग्य जमीन में बोया जाये तो कालान्तर में वह विशाल वृक्ष के रूप में फलीभूत होता है।** ऐसी दान की महिमा होती है।

अतः इससे हम इस बात की शिक्षा ले कि अपने मोह को, आसक्ति को तोड़ते हुए अपनी शक्ति के अनुसार दान दे। क्योंकि दान श्रावक का प्रमुख / प्रधान धर्म है।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान-तलोद (गुज.)
दिनांक - १४-११-०९
दिन-शनिवार

प्रव.४ / श्लोक - ९-११

इन्द्र भी तरसे दान पुण्य को

- जिसने मोक्षमार्गी साधु को आहार दिया है तो समझ लेना उसने ही मोक्षमार्ग पर चलने की योग्यता धारण की है उसने अपने जीवन को मोक्षमार्ग में लगा दिया है।
- संसार में भक्ति से एक ग्रास भी साधु के लिये आहार क्यों न दिया जाये तो भी वह अनंत फलों को प्रदान करने वाला हुआ करता है।

बंधुओ ! परम पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज पूर्व गाथा में उस श्रावक की भी प्रशंसा करते है जो भले मुनि न बन पाये लेकिन गृहस्थ में रहकर भी गृहस्थ धर्म का पालन करते है जिसके कारण वह श्रावक भी आदरणीय हो जाते है, प्रशंसनीय हो जाते है। इसके विषय में आचार्य महाराज पुनः लिखते है-

यो दत्तवानिह मुमुक्षुजनाय भुक्तिं भक्त्याश्रितः शिवपथे न धृतः स एव ।
आत्मापि तेन विदधत्सुरसद्म नूनमुच्चैः पदं व्रजति तत्सहितोऽपि शिल्पी ॥९॥

अर्थ - जिस श्रावक ने यहाँ मोक्षाभिलाषी मुनि के लिये भक्ति पूर्वक आहार दिया है उसने केवल उस मुनि के लिये ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्त नहीं किया है, बल्कि अपने आपको भी उसने मोक्षमार्ग में लगा दिया है। ठीक ही है-देवालय बनाने वाला कारीगर भी निश्चय से उस देवालय के साथ ही ऊचे स्थान को चला जाता है।

बंधुओ ! जो श्रद्धावान् है विवेकवान् है और क्रियावान् है वह श्रावक है और जो इससे रहित है वह श्रावक नहीं है। हमारे आचार्यो ने ५वें गुणस्थानवर्ती को ही श्रावकों में संग्रहीत किया है। लेकिन आज धार्मिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को भी श्रावक कहा जाता है। इस प्रकार जो श्रावक जिसमें आहार देने के लिये भी पुण्य चाहिये जिसका ऐसा पुण्य होता है वह ही आहार दे सकता है। शास्त्रों में त्रिवर्णीक (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय) लोग ही आहार देने के योग्य है लेकिन इन तीन वर्ण के होने पर भी यदि किसी का आचरण अच्छा नहीं है तो भी वह आहार दान देने का पात्र नहीं है। प्राचीन समय में संत आहार के समय में कुछ भी नहीं पूछते थे क्योंकि सभी सदाचारी होते थे लेकिन आज के समय में पता ही नहीं चलता कि कौन व्यक्ति कैसा हैं। एक बार किसी व्यक्ति ने पूछा - महाराज आप आहार में जनेऊ क्यों दिलाते है ? मैंने कहा-आज पता ही नहीं चलता कि कौन शराब पीता है, या मांस खाता है आदि। लेकिन जो जनेऊ धारण करता है वह अष्ट मूलगुण का धारी हो जाता है। यह भी एक व्रत है।

बंधुओ ! यज्ञोपवीत धारण करना हमारे धर्म की प्राचीन संस्कृति है लेकिन आश्चर्य है कि हम उसे भूल गये और ब्राह्मण वर्ग ने उसे स्मृति में रखा और परिणाम निकला कि आज यज्ञोपवीत ब्राह्मण वर्ग की परम्परा मानी जाती है। लेकिन जब हम अपने प्राचीन शास्त्रों को खोलते है तो ज्ञात होता है कि महाराज नाभिराय और इन्द्र ने जन्माभिषेक के बाद बालक ऋषभदेव का अलंकार करते हुये यज्ञोपवीत उनके गले में डाल दिया था। महाराजा ऋषभदेव ने भी भरत चक्रवर्ती के यज्ञोपवीत संस्कार किये थे। यज्ञोपवीत के संस्कार ८ वर्ष की उम्र में किये जाते है ताकि वह धर्म क्रिया के योग्य पात्र बन सके तथा उसे ८ मूलगुण के नियम दिलाये जाते है। जिससे वे आहार दे सकते है। लेकिन जिस व्यक्ति ने अंतरजातीय विवाह कर लिंया है, विधवा विवाह किया है जो सामाजिक पद्धति

Scanned with CamScanner

के प्रतिकूल माना गया है वह आहार देने का अधिकारी नहीं है।

बंधुओ ! आज के समय में किसी भी व्यक्ति को खाना खिला देते है तो लोग कहते है मैंने आहार दे दिया, लेकिन आहार और भोजन में बहुत बड़ा अंतर है। मुनिजन तो आहार करते है और श्रावक भोजन करते है। कारण कि जब आप किसी संत से आहार के विषय में पूछेंगे तो 'आहार' शब्द का प्रयोग करेंगे और महाराज भी यही कहेंगे मेरा आहार हो गया लेकिन गृहस्थों के लिये 'भोजन' शब्द का प्रयोग किया जाता है 'आहार' शब्द का नहीं। क्योंकि जब आप भोजन करते है तो उस भोजन में रुचि रखते है कि भोजन में नमक है या नहीं, चटनी है या नहीं आदि तथा थाली में अनेक प्रकार की सामग्री अलग-२ रखी जाती है कि जैसा आपको उचित हो उस अनुसार भोजन करें। और इस रुचि का नाम ही भोग है। जैसे माँ अपने बच्चे से पूछती है-बेटा, क्या खाओंगे। तो बच्चा बोल देता है-माँ, मैं खीर खाऊँगा, खीर बनाना। इस प्रकार बेटा अपनी रुचि प्रकट करता है और माँ उस प्रकार की सामग्री बना देती है तो वह भोग है। लेकिन संत जब आहार करते है तो उसमें रुचि नहीं लेते और यदि आप पूछोंगे कि महाराज आप आहार में क्या लेंगे ? तो महाराज मना कर देते है कि नहीं, जो मिलेगा वह ले लेंगे। क्योंकि उन्होंने जिह्वा इन्द्रिय को जीत लिया है। साथ ही संत आहार करते हुये कोई इशारा नहीं करते कि इसमें नमक, मिर्च, शक्कर आदि डाल दो वे किसी वस्तु को माँगते नहीं है क्योंकि मौन है तथा थाली में भी भोजन नहीं करते इसलिये रुचिकर वस्तु भी नहीं डाल सकते है। बस उनके हाथ में जो आ जाता है उसके लिये वे आनंद के साथ धर्मवृद्धि के लिये स्वीकार कर लेते है इसलिये उनका आहार होता है और आपका भोजन होता है।

ऐसा ८ मूलगुणों से युक्त श्रावक मुमुक्षु प्राणियों के लिए भक्ति पूर्वक आहार देता है। और मुमुक्षु का अर्थ है जो मोक्षमार्ग पर चलने वाले होते है या मोक्ष के इच्छुक होकर मोक्षमार्ग पर निरन्तर अपने कदम बढ़ाते रहते है। क्योंकि मुमुक्षु एक क्षण भी खाली बैठना पसंद नहीं करता। उसे एक क्षण भी घर में रहना १वर्ष की तरह लगता है। वह निरंतर अपने लक्ष्य को पाने का विचार करता रहता है। और एक दिन संयम को प्राप्त कर लेता है ऐसे मुमुक्ष के लिये, मुनि के लिये भक्ति पूर्वक जो आहार दिया जाता है उससे केवल मुनिजन ही मोक्षमार्ग पर प्रवृत्ति नहीं करते है अपितु श्रावक भी मोक्षमार्गी कहलाता है, मोक्षमार्गी हो जाता है। क्योंकि संस्कृत में कारण में कार्य का उपचार किया जाता है और उपचरित नय के अनुसार कारण को ही कार्य कह दिया जाता है जैसे राजपुत्र के लिये भी राजा कह दिया जाता है इसी प्रकार **जिसने मोक्षमार्गी साधु को आहार दिया है तो समझ लेना उसने ही मोक्षमार्ग पर चलने की योग्यता धारण की है उसने अपने जीवन को मोक्षमार्ग में लगा दिया है।** आचार्य महाराज यहाँ उदाहरण देते है कि जैसे देवालय / मंदिर को बनाने वाला शिल्पीकार मंदिर बनाता है और जैसे-२ मंदिर की ऊँचाई बढ़ती जाती है वैसे-२ मंदिर बनाने वाला भी ऊँचा उठता जाता है। इस प्रकार वह श्रावक ही श्रेष्ठ है जो श्रावक अपने हाथ से निर्ग्रंथ मुनियों के लिए आहार दान देता है।

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है

यः शाकपिण्डमपि भक्तिरसानुविद्धबुद्धिः प्रयच्छति जनो मुनिपुंगवाय।
स स्यादनन्तफलभागथ बीजमुप्तं क्षेत्रे न किं भवति भूरि कृषीवलस्य ॥१०॥

अर्थ - भक्तिरस से अनुरंजित बुद्धिवाला जो गृहस्थ श्रेष्ठ मुनि के लिये शाक (सब्जी) के आहार को भी देता है वह अनंत फल को भोगने वाला होता है। ठीक है उत्तम खेत में बोया गया बीज क्या किसान के लिये बहुत फल को

Scanned with CamScanner

नहीं देता है ? अवश्य देता है ।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है जो श्रावक मुनिजनों के लिये मात्र शाक का ही दान देता है अर्थात् उसके पास बहुत सारा सामान नहीं है आहार देने के लिये तो भी वह अनंत फल को भोगने वाला होता है । क्योंकि आवश्यक नहीं आहार में बहुत सारे व्यंजन हो तभी वह चौका कहलायेगा । कुछ लोगों की यह अवधारणा रहती है कि जब तक ४-६ प्रकार की सामग्री न हो तो वह चौका किस काम का ? और अनेक सामग्री बना लेते है और परिणाम यह निकलता है कि शक्ति से अधिक खर्चा हो जाता है फिर उसे एक-२ दिन का चौका वजनदार हो जाता है जबकि आचार्य महाराज कहते है ऐसा नहीं करना चाहिए । क्यों ? यदि आप शक्ति से अधिक खर्च करके सामग्री तैयार करोंगे तो आपका एक दिन भी चौका खाली जायेगा तो आपका सिर दर्द करने लगेगा ।

इस प्रकार भक्ति के साथ दिया हुआ साग (सब्जी) का आहार भी अनंत फल को देने वाला हुआ करता है । आचार्य महाराज यहाँ उदाहरण देते है जैसे उत्तम खेत में बोया गया छोटा सा भी बीज एक बहुत बड़े वृक्ष का आकार ले लेता है जिसमें अनेक फल होते है कि आप उन फलों को गिन भी नहीं सकते है और फिर एक-२ फल में इतने-२ बीज होते है कि एक-२ फल के बीज भी नहीं गिन सकते है । इस प्रकार एक बीज का प्रभाव कि उसमें इतने सारे बीज उत्पन्न हो गये । कहने का तात्पर्य यह है कि **संसार में भक्ति से एक ग्रास भी साधु के लिये आहार क्यों न दिया जाये तो भी वह अनंत फलों को प्रदान करने वाला हुआ करता है ।**

इसी बात को पुनः कहते है-

साक्षान्मनोवचनकायविशुद्धिशुद्धः पात्राय यच्छति जनो ननु भुक्तिमात्रम् ।
यस्तस्य संसृतिसमुत्तरणैकबीजे पुण्ये हरिर्भवति सोऽपिकृताभिलाषः ॥११॥

अर्थ - मन, वचन और काय की शुद्धि से विशुद्ध हुआ जो मनुष्य साक्षात् पात्र के लिये केवल आहार को ही देता है उसके संसार से पार उतारने में अद्वितीय कारण स्वरुप पुण्य के विषय में वह इन्द्र भी अभिलाषा युक्त होता है । अभिप्राय यह है कि इससे जो उसको पुण्य की प्राप्ति होने वाली है उसको इन्द्र भी चाहता है ।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज आहार दान के फल का कितना महत्त्व है उसके विषय में कहते है कि आहार, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि और आहार जल शुद्धि पूर्वक ही दिया जाता है । मन शुद्धि का अर्थ है कि मन पवित्र है यानि मन में कोई राग-द्वेष, कषाय, असंतोष नहीं है । पड़गाहन के लिये भी खड़े होते है तो भी मन शुद्ध है, कि जो भी पात्र आ जाए उसमें ही संतोष धारण कर लेना क्योंकि आहार दान के साथ-२ शुद्धि भी महत्वपूर्ण है । बहुत सारे लोग दान की महिमा सुनते है तो आहार दान देना तो चाहते है लेकिन शुद्धि का ध्यान नहीं रखते । तो ध्यान रखना जहाँ शुद्धि नहीं वहाँ निरन्तराय आहार नहीं होगा । कुछ न कुछ विघ्न आ जायेगा । कदाचित् आहार निरन्तराय भी हो जाये तो भी श्रावक को प्रसन्नता नहीं होगी क्योंकि मन-वचन-काय-आहार जल शुद्ध नहीं है । कदाचित् श्रावक भी प्रसन्न हो जाये तो साधु का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा । पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज भी बोलते थे कि मन-वचन-काय पर आहार का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है । कहा भी है

'जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन ।'

जो व्यक्ति शुद्ध मन से आहार देता है तो साधना में विशेष मन लगता है ।

Scanned with CamScanner

साथ ही आहार दान अपनी शक्ति अनुसार ही देना चाहिए क्योंकि शक्ति से अधिक खर्च किया है। और फिर उसमें भी खाली चला जाये तो फिर पूछना ही क्या है। एक बार एक श्रावक ने आकर कहा-कि महाराज माफ कीजिये। मैंने कहा-क्या हो गया ? बोले-कुछ नहीं आपका ५-७ दिन से मेरे यहाँ आहार नहीं हो पा रहा है। मैंने कहा-मेरा आपसे कोई लड़ाई-झगड़ा तो है नहीं। और दूसरे दिन भी आहार नहीं हुआ तो आये और बोले - आज कुछ न कुछ बतलाइये, आप कौन सा नियम दिलाना चाहते है, मैं सभी नियम लेने के लिये तैयार हूँ आप कुछ ध्यान रखिये। अब ७वें दिन भी आहार नहीं हुआ तो स्थिति खड़ी हो गई और उसने कहा-अब एक दिन और लगाने की मेरी क्षमता है। मैंने कहा-आप खाना तो रोज खाते हो फिर। बोले-खाना-खाना एक अलग बात है और चौका लगाना अलग बात है। मैंने कहा-क्यों ? बोले-चौके में तो सब कुछ व्यवस्था बनाई जाती है इसलिये चौके के लिये परेशानी आ रही है। मैंने कहा-कोई भी संत आपसे कभी ये नहीं कहते कि आपने इतना कम सामान क्यों बनाया ? विभिन्न सामग्री क्यों नहीं बनाई ? इसलिये भगवान अर्हंत देव कहते है श्रावकों के लिये वही सामग्री आहार में देना चाहिए तथा उतनी ही सामग्री तैयार करना जिसमें आपकी गुंजाइश हो। क्योंकि आवश्यक नहीं आप बहुत प्रकार की सामग्री तैयार करके रखें। यदि आपकी सामर्थ्य है तो आप मात्र दाल-रोटी ही आहार में दे। संत उसको प्रसन्नता से लेकर आयेंगे और अपनी साधना करेंगे। लेकिन यहाँ आचार्य महाराज ने दाल रोटी की भी बात नहीं कही मात्र साग-सब्जी की ही बात कही है। और वह सब्जी भक्ति के साथ देना चाहिए। क्योंकि संतों को रस आहार में नहीं भक्ति में आता है। और प्रेम व भक्ति से यदि आप रुखा भोजन भी खिलाओंगे तो वह सरस भोजन की तरह प्रतीत होता है और बिना भक्ति के सरस भोजन भी नीरस भोजन की तरह होता है।

बंधुओ ! हिन्दु सम्प्रदाय में रामचरित मानस में उल्लेख आता है कि वन विहार के समय रामचंद्र जी ने शबरी के झूठे बेर खाये थे क्योंकि उसके पास जंगल में कुछ नहीं था वह स्वयं जंगल के फल खाती थी वही उसके पास में थे। एक दृष्टि से देखे तो यही कहा जायेगा कि कैसी थी शबरी की राम को झूठे बेर खिलाये लेकिन दूसरी दृष्टि से उसका लक्ष्य था कि कहीं खट्टा बेर न खाने में आ जाये। यह उसकी श्रद्धा-भक्ति थी।

इस प्रकार चौका लगाते समय यह न सोचे कि अनेक सामग्री होना चाहिए अपितु जो है जैसा है वह शुद्ध, प्रासुक एवं मर्यादित होना चाहिए। वह साग भी क्यों न हो तो भी संतजन उसके लिए बड़े स्नेह से स्वीकार कर लेंगे वे आपसे कुछ भी नहीं कहेंगे क्योंकि वे वीतरागी है।

प्रथम गणिनी आर्यिका विजयामति माताजी जिन्होंने अपने आत्म चिंतन की डायरी में लिखा कि कभी-२ ऐसी स्थिति खड़ी हो जाती है कि आहार के बाद सामायिक, ध्यान, चिंतन-मनन, स्वाध्याय में अधिक मन लगता है और कभी-२ आलस्य बहुत आता है। मन नहीं लगता है। ऐसा क्यों ? इसका कारण उन्होंने लिखा-आहार। एक बार कुछ लोगों ने कहा कि - बूढ़े-पुराने लोग होते है उनको दिखते भी नहीं आता है वह क्या आहार करायेगा ? लेकिन हमने देखा-कि बूढ़े-पुराने लोग जिन्हें दिखने भी नहीं आता है तो भी वे निरन्तराय आहार करा देते हैं। और देख-२ कर भी देने वाले से निरन्तराय आहार नहीं हो पाते है। क्योंकि विशुद्धि जिसके पास है वहाँ ही विघ्न टलते है। और इससे व्यक्ति की परीक्षा होती है कि व्यक्ति की विशुद्धि कैसी है ? एक बार एक ब्रह्मचारिणी महाराज के पास पहुँची और बोली-महाराज, हम जब-२ भी आहार देते है तो अंतराय हो जाता है क्या कारण है ? महाराज ने कहा-पवित्र मन से नहीं देती हो। अतः आहार के समय मन शुद्धि सही होना चाहिए, तथा वचन शुद्धि भी सही

Scanned with CamScanner

होना चाहिए। थोड़ी-२ बातों में आहार के समय बहस नहीं होना चाहिए, अपशब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए, कम से कम बोलना चाहिए। साथ में काय शुद्धि भी होना चाहिए। चौके में प्रवेश करते समय पूरे पैर धोना चाहिए, अंदर बाहर के कपड़े पूर्ण रुप से शुद्ध होना चाहिए। यह वस्त्र शुद्धि, काय शुद्धि के अन्तर्गत मानी जाती है। जब आप शुद्धि में कही से निकले तो अगल-बगल में देखे कि कोई बिना सोले का व्यक्ति तो नहीं खड़ा है, रास्ते में नीचे देखते हुए चले जिससे काय शुद्धि बनी रहे।

इसके पश्चात् चौथी शुद्धि आहार जल शुद्धि है। जिसका अर्थ है आहार मर्यादा से बनाया गया है, अमर्यादित सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है। तथा आहार में घुनी हुई सामग्री नहीं चलाई जाती है। घी, दूध, पानी शुद्ध होना चाहिए। पानी स्कूटर या रिक्शे पर असोले में नहीं लाया जाता, जूता-चप्पल पहनकर, अशुद्ध सामग्री लगा कर नहीं लाग्ग जाता। क्योंकि संत आपके चौके में देखने नहीं जाते है कि आप क्या करते है मात्र उस समय आपके वचनों द्वारा एक विश्वास लेते है कि मन वचन काय तथा आहार जल शुद्ध है और आहार ले लेते है। इस प्रकार से जो शुद्धि का ध्यान रखता है उसके लिए अनंत फल मिलता हैं और जो यद्वा-तद्वा तरीके से आहार देता है उसके लिये फल मिलना तो बहुत दूर की बात रही वह पाप कर्म का ही आस्रव करता है इसलिये शुद्धि के विषय में पूरा ध्यान रखना चाहिये।

क्योंकि शुद्धि पूर्वक जो आहार देता है उसके द्वारा जो पुण्य प्राप्त करता है उस पुण्य को देख कर या उस आहार दान के फल को देखकर स्वर्ग का इन्द्र जो एक भवावतारी होता है वह भी अभिलाषा करता है कि ऐसा अवसर मुझे भी एक बार मिल जाये। लेकिन देवता आहार दे नहीं सकते और संत ले नहीं सकते। वे मात्र अभिलाषा ही करते है कि वह दिन कब आ जाये जब मैं भी संतों को निर्दोष विधि से आहार दान दूँ। इस प्रकार दान की महिमा को जानना चाहिये।

इसी भावना के साथ -

महावीर भगवान की जय

दिनांक - १५-११-०९
स्थान-तलोद (गुज.)
दिन-रविवार

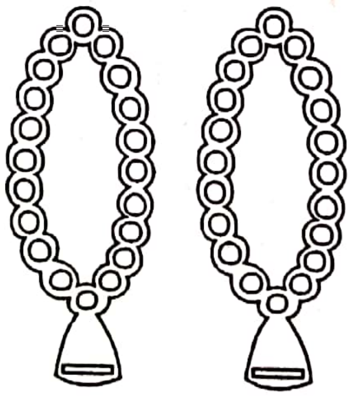

दान बीज से मोक्ष फल

◆ रत्नत्रय, आत्मा को छोड़कर अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाया जाता है वह एक मात्र निर्ग्रंथ मुनियों में ही पाया जाता है इसलिये मुनियों की आराधना ही रत्नत्रय की आराधना है और रत्नत्रय की आराधना ही मुनियों की आराधना है।

बंधुओ ! परम पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज ने पूर्व गाथा में समझाया था कि मुनि जनों को आहार देने से क्या-क्या लाभ होते है ? श्रावकों का दान धर्म किस प्रकार से अपनी विशेषता को लिये होता है ? तथा एक मात्र साग का भी आहार दिया जाये तो भी वह अनंत फल को प्रदान करने वाला होता है। इसी बात को पुनः कहते है

मोक्षस्य कारणमभिष्टुतमत्र लोके तद्धार्यते मुनिभिरङ्गबलात्तदन्नात् ।
तद्दीयते च गृहिणा गुरुभक्तिभाजा तस्माद्धृतो गृहिजनेन विमुक्तिमार्ग: ॥१२॥

अर्थ-लोक में मोक्ष के कारणभूत जिस रत्नत्रय की स्तुति की जाती है वह मुनियों के द्वारा शरीर की शक्ति से धारण किया जाता है, वह शरीर की शक्ति भोजन से प्राप्त होती है, और वह भोजन अतिशय भक्ति से संयुक्त गृहस्थ के द्वारा दिया जाता है। इसी कारण वास्तव में उस मोक्षमार्ग को गृहस्थजनों ने ही धारण किया है।

बंधुओ ! इस संसार में मोक्ष के कारणभूत जो रत्नत्रय है उसकी स्तुति की जाती है। ज्ञानीजन, मुनिजन सदैव ही रत्नत्रय की आराधना करते है उसकी भाव पूजा करते है लेकिन श्रावक द्रव्यपूजा की मुख्यता से उस रत्नत्रय की आराधना करते है। पर्यूषण पर्व के अंतिम दिन तेरस, चतुर्दशी तथा पूर्णामा में रत्नत्रय व्रत होता है जिसमें ३ दिन का उपवास, एकाशन या अपनी शक्ति के अनुसार आराधना करते है। ऐसा पूज्यनीय रत्नत्रय जिसके लिये आचार्य समन्तभद्र महाराज ने धर्म यह संज्ञा दी है। वे रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते है-

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदु: ॥
यदीयं प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धति: ॥३॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एक धर्म है जिसे धर्म के ईश्वर, भगवान ने कहा है। लेकिन ऐसा रत्नत्रय बाहर के पदार्थों में नहीं मिलता है। द्रव्य संग्रह में सिद्धांति देव आचार्य नेमिचंद्र महाराज ने कहा है-

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्ण-दवियम्हि ।
तम्हा तत्तिय मइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

रत्नत्रय, आत्मा को छोड़कर अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाया जाता है वह एक मात्र निर्ग्रंथ मुनियों में ही पाया जाता है इसलिये मुनियों की आराधना ही रत्नत्रय की आराधना है और रत्नत्रय की आराधना ही मुनियों की आराधना है। क्योंकि मुनियों को नस्कार करते समय हमारी दृष्टि में रत्नत्रय हुआ करता है। इसलिये जब हम

Scanned with CamScanner

५ परमेष्ठी को नमस्कार करते तो उनके सम्मुख पांच ढेरी से चावल चढ़ाते है। जिनवाणी के सम्मुख जब हम नमस्कार करते है तो चारों अनुयोग के ४ ढेरी से चावल चढ़ाते है तथा गुरुओं के सम्मुख रत्नत्रय के प्रतीक रुप तीन ढेरी से चावल चढ़ाते। क्योंकि संत रत्नत्रय की मूर्ति होते हैं। और वह रत्नत्रय साधु के निमित्त से ही टिकता है तथा वह रत्नत्रय उनकी आत्मा में पाया जाता है और उस रत्नत्रय की शरीर के माध्यम से ही पालना संभव है अर्थात् वह मुनियों के द्वारा शरीर की शक्ति से धारण किया जाता है। छद्मस्थ अवस्था में यदि शरीर स्वस्थ्य है तो रत्नत्रय की आराधना अच्छी होती है शरीर स्वस्थ्य नहीं तो रत्नत्रय की आराधना अच्छी नहीं होती है। क्योंकि शरीर आहार के कारण से टिकता है। यदि भोजन न किया जाये तो शरीर काम नहीं करता है। हिन्दु सम्प्रदाय में भी कहा है-

भूखे भगत न होय गोपाला, जा तोरी कंठी जा तोरी माला

लेकिन सर्वधा ऐसी बात नही हैं निर्ग्रंथ संत निर्जला उपवास करके, सल्लेखना समाधी में आजीवन अन्न-जल का त्याग करके साधना करते है। आचार्य महाराज ने यहाँ यह बात सामान्य लोगों की दृष्टि से कही कि सामान्यता शरीर आहार के बल से चलता है और वह आहार श्रावक के द्वारा भक्ति पूर्वक दिया जाता है। इस कारण उस श्रावक के द्वारा मोक्षमार्ग को ही धारण किया जाता है, क्योंकि उसने रत्नत्रय रुपी वृक्ष के लिये पानी देकर उसे सुरक्षित किया है ऐसा जानना चाहिए। इसी बात को आगे कहते है -

नानागृहव्यतिकरार्जितपापपुञ्जैः खञ्जीकृतानि गृहिणो न तथा व्रतानि ।
उच्चैः फलं विदधतीह यथैकदापि प्रीत्यातिशुद्धमनसा कृतपात्रदानम् ॥१३॥

अर्थ -लोक में अत्यन्त विशुद्ध मन वाले गृहस्थ के द्वारा प्रीतिपूर्वक पात्र के लिये एक बार भी किया गया दान जैसे उन्नत फल को करता है वैसे फल को, गृह की अनेक झंझटों से उत्पन्न हुए पाप समूहों के द्वारा कुबड़े अर्थात् शक्ति हीन किये गये गृहस्थ के व्रत नहीं करते हैं।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि व्रतों को धारण करने की अपेक्षा दान देना श्रेष्ठ है। लेकिन कब श्रेष्ठ है ? तो जब पात्र से प्रीति होगी तब और जब तक पात्र से प्रीति नहीं होगी तब तक दान सम्यक् नहीं कहा जा सकता है। वात्सल्य अंग के व्याख्यान में छहढ़ालाकार पं. दौलतराम जी ने तीसरी ढ़ाल में कहा है कि

धर्मी सों गो वच्छ प्रीतिनम, कर जिन धर्म दिपावे ॥१३॥

अर्थात् हमारी प्रीति गाय और बछड़े की प्रीति के समान होना चाहिये क्योंकि दोनों एक-दूसरे के बिना नहीं रह पाते है और एक-दूसरे को देख पुलकित होते है। जैसे छोटे बच्चे माँ को देखकर प्रसन्न हो जाते है। मेरी भावना में भी कहा गया है

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावें ॥६॥

इसलिये दान देते समय हमारा चेहरा प्रसन्न-२ होना चाहिये। क्योंकि प्रसन्न मुद्रा से यदि आप आहार दोंगे तो उसका एक अलग ही प्रभाव पड़ता है और जो मन को मुकुलित करके उदास चेहरे से आहार देता है उसका प्रभाव दूसरा होता है। एक बार पूज्य आचार्य श्री से किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया कि आप अमुक व्यक्ति से ही अधिक मात्रा

Scanned with CamScanner

में आहार क्यों लेते हो ? महाराज ने कहा-वह बहुत प्रसन्नता से आहार देता है। तब दूसरे व्यक्ति ने कहा-मुझसे क्यों नहीं लेते हो ? महाराज-तुम्हारे चेहरे को देख कर मुझे दुख होता है, शर्म आती है इसलिये मैं तुमसे कम आहार लेता हूँ। इसलिये आचार्य महाराज कह रहे है कि साधुओं को जब भी दान दो तो कभी मुख को म्लान करके नहीं प्रसन्न मुद्रा से दान दो। प्रीति पूर्वक दो क्योंकि हमारे लिये रत्नत्रय से प्रीति है और वह रत्नत्रय संतों में पाया जाता है।

बंधुओ ! एक बार आचार्य शांति सागर जी महाराज को एक छोटी सी बालिका ने आहार दिया तो महाराज बोले-ओ माँ ! तूने तो बड़े अच्छे से आहार कराया। तभी बगल में बैठे प. सुमेरचंद्रजी हँसने लगे। महाराज-क्यों हँस रहे हो ? उन्होंने कहा-मैं इसलिये हँस रहा हूँ कि वह छोटी सी बालिका उसकी उम्र कितनी है और आपकी उम्र कितनी है आप उसको माँ कह रहे है यदि आप उसको बेटी कहते तो अच्छा था। महाराज-आहार देते समय दाता माँ के तुल्य होता है। क्यों कि माँ ही श्रेष्ठ आहार करा सकती है। कहा भी गया है

भोजन करना माँ का, चाहे जहर ही क्यों न हो।
सन्मति लेना भाई से, चाहे बैर क्यों न हो ॥

कभी भी पत्नि, बेटा, बेटी, पड़ोसी के हाथ का आहार नहीं करना चाहिये आहार सदैव माँ के हाथ का करना चाहिये। तब किसी ने कहा-महाराज जिसकी माँ न हो तो वह क्या करेगा ? मैंने कहा-किसी सुभाषितकारों ने कहा कि पत्नी सदैव पत्नी नहीं रहती वह भोजन के समय माँ के तुल्य हुआ करती है।

बंधुओ ! भरतेश वैभव में लिखा है भरत चक्रवर्ती जिस समय भोजन के लिये बैठता था उस समय सुभद्रा आग्रह करती थी कि स्वामी अमुक सामग्री लीजिये, थोड़ा सा और लीजिये, रुक-रुक कर भोजन कीजिये, शांति से भोजन कीजिये, पूरा भोजन कीजिये। तब दूसरी रानियाँ सुभद्रा को देखती थी और कहती थी-तुम्हें डर नहीं लगता कि मैं अपने स्वामी के लिये आहार करा रही हूँ और ऐसे बोलती हो जैसे कोई तुम्हारा बच्चा हो ? सुभद्रा कहती थी-हाँ, इस समय तो वे बच्चे ही है और मैं उनकी माँ हूँ। इस प्रकार भोजन कराते समय पत्नि, माँ के रूप में हुआ करती है और हमारा शास्त्र भी कहता है आहार कराते समय श्राविका ही नहीं श्रावक भी माँ के तुल्य हुआ करते है जो बड़े प्रेम से, ममता से, आहार कराता है। लेकिन ध्यान रखना माता और बेटे का संबंध और दाता तथा मुनि के संबंध में काफी अंतर है यहाँ पूज्यता और सम्मान की मर्यादा है और वहाँ नहीं है और जो समानता दी गई वह मात्र प्रीति के कारण है।

बंधुओ ! एक बार मुझसे किसी व्यक्ति ने पूछा-आप ऐसा क्यों कहते है ? मैंने कहा-संत कभी अपनी इच्छा से कुछ माँगते नहीं है कुछ कहते नहीं है अनुकूल भी आहार ले लिया करते है और कभी प्रतिकूल भी आहार ले लिया करते है। संत की चर्या के विषय में कहा है -

पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लेत कहे कछु नाहीं।

अर्थात् मुनिजन की भिक्षा पराधीन है वे दूसरे के घर में आहार लेने जाते है तो कुछ कहते नहीं है। कभी प्रकृति विरुद्ध आहार भी मिलता है तो कभी अनजान, विवेक हीन श्रावक के द्वारा उल्टा-सीधा आहार दे दिया जाता है जो स्वास्थ्य के प्रतिकूल हो जाता है। इसलिये आचार्य महाराज कहते है आहार देना भी एक कला है और वह कला विवेकवान् श्रावक के अंदर में ही आती है। इसलिये माँ की उपमा दी गई कि माँ इन सारी बातों को ध्यान में रखती है कि बेटे

Scanned with CamScanner

को कब, कैसे, क्या, कितना आहार चलाना है ?

एक बार ऐसा ही हुआ परम पूज्य आचार्य सन्मति सागर महाराज की दीक्षा सम्मेद शिखर पर हुई और दीक्षा के बाद पहले आहार का दिन था वे पहाड़ की वंदना करके आहार पर उठे तो भक्त ने पड़गाहन करके नवधा भक्ति से आहार प्रारंभ कराया तथा पानी का जग लेकर खड़ा हो गया। महाराज ने एक अंजुली, दो अंजुली, तीन अंजुली पानी लिया और परिणाम यह निकला कि श्रावक पानी देता गया और महाराज पानी लेते रहे। उस दिन महाराज का नियम था कि श्रावक जो देगा मैं लेता रहूँगा अपनी ओर से मना नही करूँगा। यह श्रावक का विवेक की वह समझे कि कौन सी सामग्री कितनी मात्रा में देना चाहिए। महाराज ने २-३ जग पानी लिया और बैठ गये। अब श्रावक आपस में चर्चा करने लगे कि महाराज ने कुछ नहीं लिया, सारी थाली भरी रह गई। महाराज ने कहा-तुमने दिया क्या ? मैं अपने हाथ से तो उठाता नहीं। अतः हमें आहार दान की विधि का भी ज्ञान होना चाहिये और यह ज्ञान एक माँ को होता है इसलिये कहा-माँ की तरह प्रीतिपूर्वक पात्र के लिये एक बार भी आहार दान दिया जाता। वह उन्नत फल को प्रदान करता है वैसे फल को गृह की अनेक झंझटों से उत्पन्न हुए पात्र अनेक प्रकार के पाप समूह जहाँ उपार्जित किये जाते है वह प्राप्त करता है उतना फल शक्ति हीन किये गये गृहस्थ के व्रत नहीं करते।

पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज के संघ में एक बार कोई मुनिराज किसी कारण से आहार में लेट हो गये और जब वे सामायिक के बाद आहार को उठे तो उस समय संघस्थ त्यागी व्रती श्रावक ने कहा-मेरा तो सामायिक का समय हो गया है मैं सामायिक करूँ या आहार दूँ। महाराज ने कहा-नहीं, पहले आहार देना ही सबसे बड़ी सामायिक है व्रत है प्रतिमा है। पूछा-क्यों ? महाराज ने कहा-व्रतों से भी बढ़कर आहार दान हुआ करता है। इसलिये आहार दान की बड़ी महिमा हुआ करती है कि जिसमें व्रती के व्रतों की अपेक्षा भी दाता के आहार दान को प्रधानता दी गई है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है -

मूले तनुस्तदनु धावति वर्धमाना यावच्छिवं सरिदिवानिशमासमुद्रम् ।
लक्ष्मीः सदृष्टि पुरुषस्य यतीन्द्रदानपुण्यात्पुरः सह यशोभिरतीद्धफेनैः ॥१४॥

अर्थ - सम्यग्दृष्टि पुरुष की लक्ष्मी मूल में अल्प होकर भी तत्पश्चात् मुनिराज को दिये गये दान से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से कीर्ति के साथ निरन्तर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती हुई मोक्ष पर्यन्त जाती है। जैसे-नदी मूल में कृश होकर भी अतिशय दीप्त फेन के साथ उत्तरोत्तर वृद्धिगत होकर समुद्र पर्यन्त जाती है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज यहाँ कह रहे है कि दान देने से लक्ष्मी घटती नहीं अपितु और अधिक बढ़ती है। जैसे नदी का स्त्रोत प्रारंभ में बहुत छोटा होता है लेकिन धीरे-२ वही नदी बढ़ती जाती है और आगे बढ़ते-२ वह समुद्र के रुप को धारण कर लेती है। एकबार किसी व्यक्ति ने मुझ से पूछा-ऐसा क्यों ? मैंने कहा-उसका कारण है नदी बहती एवं बढ़ती रहती है। नदी का अर्थ होता है 'न+दी' जो देती न हो लेकिन यह अन्वयार्थ नहीं रौढिक अर्थ है वास्तविकता में देखा जाय तो नदी देती ही देती रहती है जितने भी प्यासे व्यक्ति आते है सभी को पानी देती है और

Scanned with CamScanner

निरन्तर बढ़ते-२ समुद्र के तुल्य हो जाती है।

एक बार श्रेयांसगिरी में हम लोगों का चातुर्मास चल रहा था वहाँ पर वहाँ के विधायक कुसमरिया जी अचानक असमय में आ गये। उस समय वहाँ कोई श्रावक नहीं था क्योंकि आहार देने के बाद सभी श्रावक अपने-२ घर चले गये थे। क्षेत्र जंगल में था इसलिये वहाँ एक माली एवं एक पुजारी था जो आकर बार-२ कहे-महाराज कुसमरिया जी आये हैं। मैंने कहा-बड़ी खुशी की बात है उन्हें लाकर बैठाइये। अब वहाँ पर कुछ बैठने के लिये भी नहीं था क्योंकि ऑफिस का ताला बंद था वो आये और मेरे पास जमीन पर ही बैठ गये और गद्‌गद् होते हुये बोले-महाराज श्री, जैन समाज इतनी पैसे वाली क्यों है ? मैंने कहा-इसका बहुत बड़ा रहस्य है महावीर भगवान ने सब छोड़ा और जैनियों को ही दे दिया। तभी दूसरे सज्जन बोले-इसका भी तो रहस्य होना चाहिए कि वह सारी सम्पदा आज तक तो नहीं चलती आयेगी। वह भी थोड़े दिनों में समाप्त हो जायेगी लेकिन आज भी वे इतने सम्पन्नशाली क्यों है ? बड़ी-२ बोलियाँ ले लेते है आखिर में ऐसा क्यों ? मैंने कहा-वे देते रहते है इसलिये उनकी वृद्धि होती रहती है और जो देता नहीं है उसकी वृद्धि नहीं होती। कुसमरिया जी हसँ पड़े और बोले-अब हमको भी प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी और भाषण देना पड़ेगा कि यदि अपनी सम्पदा बढ़ानी है तो कुछ देना पड़ेगा। जैसे एक किसान एक बीज अपने हाथ से खेत में छोड़ता है तो उसके लिये कितने सारे बीज मिल जाते है फिर जो अनेक बीज छोड़ेगा उसकी महिमा ही क्या ? इसलिये लक्ष्मी देने से घटती नहीं बढ़ती है।

एक बार एक राजा ने प्रजा में शांति के लिये अपने गुरु से प्रार्थना की कि आप कोई मंत्र दे। गुरु ने गुरु मंत्र दिया कि आपको प्रातः काल की बेला में अपने महल के दरवाजे से निकलना है और रास्ते में जो भी व्यक्ति मिले उससे कुछ न कुछ आपको माँगना है। राजा के लिये यह बात कठिन लगी कि मैंने आज तक किसी के सामने हाथ फैलाया नहीं अब मैं माँगू, बड़ा कठिन है। लेकिन राजा का प्रजा के प्रति बड़ा स्नेह था इसलिये राजा ने कहा-यदि ऐसी बात है तो प्रजा के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ। योगायोग जैसे ही राजा दरबार से निकला तो सबसे पहले उसे भिखारी ही मिल गया। राजा उस भिखारी को देख शर्मिन्दित हुआ कि मैं इस भिखारी से कैसे माँगू ? इसके पास क्या होगा ? लेकिन उसके लिये याद आया कि गुरु की आज्ञा है और इसके साथ-२ प्रजा की भलाई की बात है तो उन्होंने जो विधि बताई थी मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा। और राजा उस भिखारी से बोला कि भाई ! प्रजा की शांति के लिये तुम मुझे कुछ दान दो। भिखारी ने पहली बार इस बात को सुना की कोई व्यक्ति उससे कुछ लेने के लिये आया है उसने तो वंश परम्परा से कभी किसी को कुछ नहीं दिया सदैव-२ लेता रहा जिससे वह विस्मित हो गया और सोचने लगा कि अब मैं दूँ तो क्या दूँ। और यह राजा है, नहीं दूँ तो भी नहीं बनता। वह अपने थैले में हाथ डालता है चूँकि वह घर से खाली हाथ नहीं निकला था उसने अपने थैले में कुछ सामग्री डाल रखी थी। क्योंकि भिखारी कभी कपड़ा बिछा कर भी बैठते है तो उसमें भी कुछ पैसे डाल कर रखते है। ताकि उसको देखकर व्यक्ति उसमें कुछ डाले। उसने भी थैले में कुछ चावल डाल रखे थे उसने जैसे ही हाथ डाला और एक मुट्ठी चावल भर लिया लेकिन सोचता है एक मुट्ठी यह तो बहुत है बड़ी मुश्किल से एक मुट्ठी चावल मिलता है कितने दरवाजे पर हमको घूमना पड़ता है और वह थोड़ा सा कम करता है ऐसा करते-२ अंत में जाकर के मात्र-५ दाने उसके

Scanned with CamScanner

हाथ में रह जाते है और वह राजा के हाथ में दे देता है। राजा ५ दाने लेकर अपने गुरु के पास पहुँच जाता है। यहाँ वह भिखारी दिन भर भिक्षा मागँता है शाम को घर पहुँचता है तो अपनी सारी सामग्री पलटता है और देखता है कि उसमें पाँच दाने स्वर्ण के है उसको बड़ा आश्चर्य होता है कि ५ दाने स्वर्ण के है। वह सोचता है यह तो किसी ने नहीं दिये है ये सोने के पाँच दाने कैसे हो गये ? वह ५ ही हुये ६ क्यों नहीं हुये ? फिर सोचता है - ओहो, आज सुबह मैंने राजा के लिये ५ दाने दान में दिये थे इसलिये ५ ही दाने स्वर्ण के हो गये। अब वह पछताता है कि मैंने ५ ही दाने क्यों दिये मैंने उसके लिये पूरी मुट्ठी क्यों नहीं दे दी ? यदि मैं एक मुट्ठी दे देता तो पूरी एक मुट्ठी सोने की हो जाती। कहने का तात्पर्य है कि जो दान-देता है उस समय उसकी लक्ष्मी बहुत छोटे रुप में होती है लेकिन धीरे-२ दान देते रहने से वह समुद्र की तरह हो जाया करती है। और वह दान भी सम्यग्दृष्टि पुरुषों के द्वारा दिया जाता है इसलिये वह महान फल को प्रदान करता है। अत: हम सभी को चाहिये कि जब हमें कभी कोई सत्पात्र प्राप्त हो जाये तो बड़ी प्रसन्नता से उनके लिये आहार दान करना चाहिए, उनके लिये आहार करा कर ही भोजन करना चाहिए।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक - १६-११-०९
स्थान-तलोद (गुज.)
दिन-सोमवार

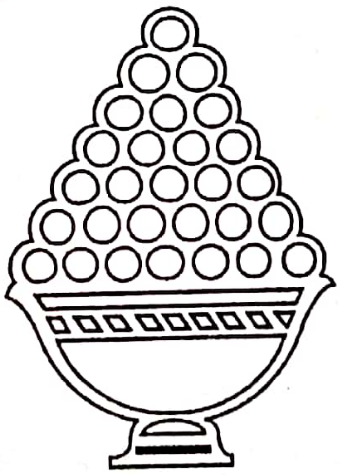

Scanned with CamScanner

प्रव.६ / श्लोक १५-१८

दान से भीक्षा की सिद्धि

- जिसके अंदर में मुनियों के प्रति आस्था, श्रद्धा, विश्वास नहीं होता है उसका हृदय मुनियों की रज से शून्य रहता है। तथा ऐसे हृदय में देव-शास्त्र-गुरु नहीं आ सकते है और फिर उसके हृदय में तत्त्व बोध कैसे हो सकता है ? फिर उसका कल्याण भी नहीं हो सकता है ?
- जिस धर्म में दया नहीं है वह धर्म नहीं है। जैसे बिना जड़ के वृक्ष नहीं हो सकता वैसे बिना दया के धर्म नहीं हो सकता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज दान की विधि और उसकी महिमा का वर्णन करते हुये लिखते है कि दान, व्रत से भी श्रेष्ठ है। व्रतों को पालने की अपेक्षा दान करना बहुत प्रधान माना गया है यही कारण है कि बारह व्रतों में एक अतिथि संविभाग नामका व्रत है जिसे श्रावक बड़ी भक्ति से पालन करता है तो उसके बारह व्रत का पालन सार्थक हो जाता है और जो उसका पालन नहीं करता है उसके बारह व्रतों का पालन सम्यक् प्रकार से नहीं हो पाता है। आगे आचार्य महाराज बतलाना चाहते है कि गृहस्थिक जीवन और साधु जीवन में बहुत बड़ा अंतर है। गृहस्थिक जीवन विभिन्न प्रकार के संकल्प-विकल्पों से भरा रहता है जिसमें निर्विकल्प आत्म ध्यान अत्यन्त दुर्लभ ही नहीं असंभव होता है। लेकिन सा विकल्प आत्म ध्यान संभव है। जबकि शुद्ध निर्विकल्प ध्यान एक मात्र मुनियों को ही पाया जाता है उसमें भी सभी मुनियों को नहीं होता बल्कि जो मुनिराज निरन्तर शुद्धात्म स्वरुप का आश्रय लेते है, उसका चिन्तन करते है, उसका मनन करते है और उसमें ही लीन होने का प्रयत्न करते है उन्हें ही होता है ऐसा ग्रहस्थों को नहीं हो सकता है। ऐसे ग्रहस्थों के विषय में आचार्य महाराज यहाँ लिखते है।

प्रायः कुतो गृहगते परमात्मबोधः शुद्धात्मनो भुवि यतः पुरुषार्थ सिद्धिः ।
दानात्पुनर्ननु चतुर्विधतः करस्था सा लीलयैव कृतपात्रजनानुषंगात् ॥१५॥

अर्थ – जगत् में जिस उत्कृष्ट आत्म स्वरुप के ज्ञान से शुद्ध आत्मा के पुरुषार्थ की सिद्धि होती है वह आत्मज्ञान गृह में स्थित मनुष्य के प्रायः कहाँ से हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता। किन्तु वह पुरुषार्थ की सिद्धि पात्र जनों में किये गये चार प्रकार के दान से अनायास ही हस्तगत हो जाती है।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे है कि शुद्धात्मा का बोध गृह में रहने वाले श्रावक को कैसे हो सकता है ? आचार्य शुभचंद्र महाराज ने भी ज्ञानार्णव में कहा है -

ख पुष्पमथवा श्रृंङ्ग खरस्यापि व्रती। (४/१७)

जिस प्रकार आकाश के फूल तथा गधे के सींग किसी भी काल या देश में नहीं हुये है फिर भी किसी भी काल

Scanned with CamScanner

या देश की अपेक्षा आकाश पुष्प तथा गधे के सींग माने जा सकते है लेकिन गृहस्थिक जीवन में रहने वाले प्राणियों के लिए ध्यान की सिद्धि तीन काल में संभव नहीं हो पाती है। प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति में भी आचार्य जयसेन महाराज लिखते है।

गृहस्थिक जीवन में आत्म ध्यान का अवकाश ही नहीं रहता है। (२५४/३४४) दिगम्बर जैन परम्परा की यह सबसे बड़ी विशेषता है जिसमें एक ही बात कही गई है कि मोक्ष होगा तो एक मात्र मुनि बनने से ही होगा। मुनि बने बिना न आज तक किसी का मोक्ष हुआ और न होगा। क्योंकि मुनिजन जो उत्कृष्ट ध्यान कर सकते है वैसा गृहस्थ नहीं कर सकते। जबकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में गृहस्थिक अवस्था में निश्चय आत्म ध्यान एवं मोक्ष हो सकता है। उनके यहाँ ऐसे अनेक उदाहरण है कि गृहस्थिक अवस्था से ही उनको मोक्ष हो गया था जैसे मल्लिनाथ भगवान जो मल्लिकुमारी थे उन्होंने दीक्षा ही नहीं ली मात्र घर में झाड़ू लगाते-२ उनको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में ग्रहस्थ अवस्था में निर्विकिल्प ध्यान का निषेध किया है फिर भी कई जगह जिन्हें तत्त्व का गहरा ज्ञान नहीं होता है वे निर्विकल्प ध्यान की बात गृहस्थिक अवस्था में कहने लगते है।

एक बार मैंने किसी से पूछा- कि आप ऐसा कैसे कहते हो ? तो वे इसका उत्तर नहीं दे पाये। उन्होंने हमसे पूछा- महाराज बहुत से लोग ऐसा कहते है तो वे क्यों कहते है ? मैंने कहा-वे इसलिये कहते है कि वे वहाँ से यहाँ आये और पुराने संस्कार साथ में लाये है इसलिये पुराने संस्कारवश ऐसा कह देते है। यदि वे जन्मतः दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेते और गहरे रुप से शास्त्र का स्वाध्याय करते तो फिर वे कभी भी ऐसा नहीं कहते। इसलिये गृहस्थ में रहने वाले गृहस्थों के लिए शुद्धात्मा का ध्यान नहीं हो सकता है। लेकिन जो चार प्रकार का दान करता है उसके लिये सहजरूप से लीला मात्र में पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाती है।

आगे आचार्य महाराज कहते है-

नामापि यः स्मरति मोक्षपथस्य साधोराशु क्षयं व्रजति तद्दुरितं समस्तम्।
यो भक्तभेषजमठादिकृतोपकारः संसारमुत्तरति सोऽत्र नरो न चित्रम् ॥१६॥

अर्थ-जो मनुष्य मोक्षमार्ग में स्थित साधु के केवल नामका ही स्मरण करता है उसका समस्त पाप शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है। फिर जो मनुष्य उक्त साधु का भोजन, औषधि और मठ आदि के द्वारा उपकार करता है वह यदि संसार से पार हो जाता है तो इसमें भला आश्चर्य ही क्या है ? कुछ भी नहीं।

बंधुओ ! आचार्य भगवन् कहते है कि जो व्यक्ति मोक्षपथ पर चलने वाले निर्ग्रन्थ भावलिंगी मुनिराजों का मात्र नाम ही स्मरण करते है उनके सभी पापकर्म क्षय को प्राप्त हो जाते है। णमोकार मंत्र जिसके उच्चारण मात्र से कितने प्राणियों के दुख दूर हुए है, कितनों ने स्वर्ग आदि के पद को प्राप्त किया। इस प्रकार जिसका नाम लेने का इतना प्रभाव है तो उनकी स्वयं की महिमा के विषय में कहना ही क्या है ? शास्त्रों में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ भगवान ने मरते हुए नाग-नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया तो उसके सुनने से वे धरणेन्द्र पद्मावती हुए। जीवन्धर कुमार

Scanned with CamScanner

ने मरते हुए कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से कुत्ता देव हुआ। चारुदत्त ने बकरे को, रामचंद्र ने जटायु को, किसी मुनिराज ने मरते हुये मेढ़े को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे वे सभी स्वर्ग के देव हुये। अंजनचोर ने णमोकार मंत्र की श्रद्धा से जैन धर्म में जन्म लिया और अंत में दीक्षा लेकर के निर्वाण को प्राप्त किया। इस प्रकार नाम के स्मरण मात्र से या श्रवण मात्र से जब प्राणियों का कल्याण हो जाता है कर्म नाश को प्राप्त हो जाता हैं। तो फिर जो मनुष्य साधुओं को भक्ति के साथ आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान एवं अभय दान देता है क्या वह उत्तम अवस्था को प्राप्त नहीं होगा ? अवश्य ही होगा।

बंधुओ ! यहाँ गाथा में 'मठ' शब्द आया है जिसका अर्थ यह नहीं कि कोई उन्हें गृह दान दे। महाराज घर नहीं रखते है क्योंकि १० प्रकार के बाह्य परिग्रहों में उसका भी त्याग है। लेकिन हाँ, ठहरने के लिये स्थान दिया जा सकता है। इसलिये आचार्य समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आहार, औषधि, शास्त्र और वसतिका इस प्रकार चार दान कहे है। वसतिका दान में एक कहानी प्रसिद्ध है कि एक मुनिराज थे वे शाम के समय शीतकाल में योग्य गुफा की खोज में थे। और खोजते हुए उनको एक गुफा मिल गई लेकिन वह गुफा एक सुअर की थी और उस समय सुअर उस गुफा में नहीं था इसलिये मुनिराज वहाँ ध्यान में बैठ गये। कुछ समय बाद वह सुअर वहाँ आ गया उसने आकर देखा तो वह बहुत प्रसन्न हो गया क्यों कि उसकी भव्यत्व शक्ति जागृत थी। जो भव्य नहीं होता है उसको कभी भी स्वप्न में आनंद नहीं आता। मंद मिथ्यात्व में तो फिर भी जिज्ञासा रहती है। लेकिन तीव्र मिथ्यात्व और अधिक प्रतिकूलता ले आता है। ऐसी अवस्था में वह कान, नाक, आँख बंद कर लेता है। वह सुअर प्रसन्नचित्त था वह सोचता है **आगतम् स्वागतम् कुर्यात्** अर्थात् आये हुये अतिथि का स्वागत करना चाहिये और मैं कैसे स्वागत कर सकता हूँ। मेरे पास तो कुछ ऐसी शक्तिसामर्थ्य नहीं है लेकिन मैं इतना जरुर कर सकता हूँ कि वसतिका के दरवाजे पर बैठ कर रक्षा करुँगा कि कोई भी क्रूर और हिंसक प्राणी महाराज के लिये कष्ट न दे। ऐसा सोचकर वह दरवाजे पर बैठ गया है। जैसे ही वह दरवाजे पर बैठा एक सिंह वहाँ आ गया। सुअर इस नात को जानता था कि मैं शेर से तो मुकाबला नहीं कर सकता, वह मुझे एक पंजा मारेगा और हम परास्त हो जायेंगे लेकिन फिर भी सुअर वहाँ से नहीं हटा और अपनी शक्ति भर शेर से मुकाबला करने लगा और शेर को घायल कर दिया तथा स्वयं भी घायल हो गया पश्चात् शेर, सुअर को देखकर भाग गया और अंत में सुअर मुनिराज की रक्षा की भावना से मर कर स्वर्ग में देव हुआ। इसप्रकार आचार्य महाराज कहते है कि मात्र एक दिन के लिए वसतिका दान देने से सुगति को प्राप्त हुआ। फिर जो भव्य प्राणी उनके लिए चारों प्रकार का दान देते है वे प्राणी संसार समुद्र से पार हो जाते है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वे प्राणी ऐसी पवित्र भावना से अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करते है और संसार से पार होकर उत्तम देव होते है और वहाँ से च्युत होकर उत्तम कुल में पुरुष पर्याय को प्राप्त कर संयम को धारण कर निर्वाण को प्राप्त करते है। इस प्रकार दान देने की महिमा है।

Scanned with CamScanner

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है-

किं ते गृहाः किमिह ते गृहिणो नु येषामन्तर्मनस्सु मुनयो न हि संचरन्ति ।
साक्षादथ स्मृतिवशाच्चरणोदकेन नित्यं पवित्रित धराग्रशिरः प्रदेशाः ॥१७॥

अर्थ - जो मुनिजन साक्षात् अपने पादोदक से गृहगत प्रथिवी के अग्रभाग को सदा पवित्र किया करते हैं ऐसे मुनिजन जिनगृहों के भीतर साक्षात् संचार नहीं करते है वे गृह क्या है ? अर्थात् ऐसे गृहों का कुछ भी महत्व नहीं है । इसी प्रकार स्मरण के वश से अपने च[illegible] जल के द्वारा श्रावक के शिर के प्रदेशों को पवित्र करने वाले वे मुनिजन जिन श्रावकों के मन में संचार नहीं करते हैं वे श्रावक भी क्या है ? अर्थात् उनका भी कुछ महत्व नहीं है ।

बंधुओ ! यहाँ पर पूज्य आचार्य महाराज ने दो बातें कही है पहली बात जिस गृह में मुनियों के चरण नहीं पड़ते है ऐसे घर से क्या प्रयोजन ? तथा जिसके हृदय में संत प्रवेश नहीं करते है ऐसे हृदय से भी क्या प्रयोजन ? **क्योंकि जिसके अंदर में मुनियों के प्रति आस्था, श्रद्धा, विश्वास नहीं होता है उसका हृदय मुनियों की रज से शून्य रहता है । तथा ऐसे हृदय में देव-शास्त्र-गुरु नहीं आ सकते है और फिर उसके हृदय में तत्त्व बोध कैसे हो सकता है ? फिर उसका कल्याण भी नहीं हो सकता है ?** क्योंकि मनुष्यों का हृदय मुनियों की भक्तिपूर्वक/श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से पवित्र होता हैं तथा जो श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता है ऐसे व्यक्ति का हृदय ही पवित्र हृदय माना गया है। अर्थात् वे पवित्र हृदय है जो श्रद्धा से मुनियों का स्मरण करते है और वह घर भी पवित्र है । जहाँ श्रद्धा से मुनियों को स्मरण किया जाता है । इस प्रकार मुनियों के स्मरण के वश से श्रावक उनके चरणोदक को अपने शिर पर लगा कर उसके प्रदेशों को पवित्र करता है ।

बंधुओ ! जब किसी के घर में संतों का आहार नहीं होता है तो प्रायः लोग बोलने लगते है महाराज हमारे घर को गंधोदक प्राप्त नहीं हुआ, इस प्रकार वह अनेक प्रकार से घुमा-२ कर बात करता है । क्योंकि महाराज से सीधे तो कह नहीं सकता कि हमारा चौका लग रहा है आप आना और यदि किसी ने कह दिया तो फिर महाराज कहेंगे मैं बिल्कुल नहीं आऊँगा और यदि [illegible]कूल विधि भी मिलेगी तो भी नहीं आऊँगा क्योंकि संत निमंत्रण से नहीं जाते है । क्योंकि यदि मैं निमंत्रण से जाऊँगा तो आप हमारे निमित्त से और हमारे नाम से आहार बनाओंगे तो हमको उसके लेने में उद्दिष्ट का दोष लगेगा तथा जो हिंसा आदि आरंभ-सारंभ होगा उसका भी पाप हमें लगेगा । इस प्रकार संत किसी की प्रार्थना, आग्रह या निमंत्रण पर आहार नहीं करते है बल्कि भाग्य के अनुसार ही उनको लाभ मिलता है । जब किसी का भाग्य होता है तो जिसका सोचते है उसका आहार होता है और जब भाग्य नहीं होता है तो सोचते-२ भी नहीं हो पाता है । इस प्रकार मुनियों की एक अलौकिक चर्या होती है ।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है जिनके घर में चरणोदक नहीं पहुँचा है यानि जिस घर में मुनि महाराज के चरण नहीं पखारे गये है । वह घर पवित्र नहीं होता है और गुजरात में कहा जाता है पगला कर दीजिये महाराज । एक दिन एक श्रावक ने कहा-मेरा मकान रास्ते में है आप हमारे घर में पगला कर दीजिये । मैंने कहा-पगला

Scanned with CamScanner

इतने सस्ते नहीं है आपको चौका लगाना पड़ेगा। वे बोले-महाराज, कल चौका लगा लग। मैंने कहा-कल का कोई भरोसा नहीं कि कल आपके यहाँ आहार हो ही जायेंगे, तुम्हें इंतजारी भी करना पड़ेगी। सज्जन बोले - महाराज मैं जरूर लगाऊँगा और अपने घर को पवित्र करूँगा क्योंकि जिस घर में संतों के चरण पड़ जाते है वह घर पवित्र हो जाता है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

देवः स किं भवति यत्र विकारभावो धर्मः स किं न करुणाङ्गिषु यत्र मुख्या।
तत् किं तपो गुरुरथास्ति न यत्र बोधः सा किं विभूतिरिह यत्र न पात्रदानम् ॥१८॥

अर्थ - जिसके क्रोधादि विकारभाव विद्यमान हैं वह क्या देव हो सकता है ? अर्थात् नहीं। जहाँ प्राणियों के विषय में मुख्य दया नहीं है वह क्या धर्म कहा जा सकता है ? नहीं। जिसमें सम्यग्ज्ञान नहीं है वह क्या तप और गुरु हो सकता है ? नहीं। जिस सम्पत्ति में से पात्रों के लिये दान नहीं दिया जाता है वह सम्पत्ति क्या सफल हो सकती है ? नहीं हो सकती।

बन्धओ ! पूज्य आचार्य महाराज इस छंद में आश्चर्य ही आश्चर्य प्रकट कर रहे है कि क्या जो विकार भाव को प्राप्त हो चुका है वह देव है ? नहीं, क्योंकि देव कभी विकार भाव को प्राप्त नहीं होते है और यदि हो जाय तो वह देव नहीं हो सकते। तथा जिसमें करुणा परक मुख्य धर्म नहीं है वह क्या धर्म हो सकता है ? नहीं हो सकता, क्योंकि दया तो धर्म का मूल है। हिन्दु सम्प्रदाय में तुलसी दास जी ने भी कहा है-

दया धर्म का मूल है, पाप रुप अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लग घट है प्राण॥

अर्थात् जिस धर्म में दया नहीं है वह धर्म नहीं है। जैसे बिना जड़ के वृक्ष नहीं हो सकता वैसे बिना दया के धर्म नहीं हो सकता है। जैन धर्म में भी कहा है **'अहिंसा परमो धमः'** अर्थात् अहिंसा परम धर्म है। आचार्य कुंदकुंद महाराज भी लिखते है- **'हिंसा रहिये धम्मे'** अर्थात् जो हिंसा से रहित है वह धर्म है। जिसमें किसी प्राणी को मारा, सताया नहीं जाता है बल्कि रक्षा की जाती है।

तीसरी बात आचार्य महाराज कह रहे है कि जिसके अंदर में सम्यग्ज्ञान नहीं है अर्थात् सम्यग्ज्ञानपूर्वक तप नहीं है वह क्या तप और गुरु हो सकता है ? नही हो सकता। क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रुप रत्नत्रय जब तक व्यक्ति के अंदर नहीं पाया जाता है तब तक वह गुरु कहलाने का पात्र नहीं होता है। और बिना रत्नत्रय के किसी को कोई गुरु कहे तो यह उसकी घनघोर अज्ञानता है जिसके कारण व्यक्ति गुरु के मूल्य को नहीं समझ पाता है और किसी को भी गुरु कह देता है। सद्गुरु का अर्थ है सच्चे गुरु। सच्चे गरु के विषय में आचार्य समन्तभद्र

Scanned with CamScanner

महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा -

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्ता, तपस्वी सः प्रशस्यते ॥१०॥

अर्थात् जो विषयों की आशा से रहित है, आरंभ, परिग्रह से रहित है तथा निरन्तर ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते है वे सच्चे गुरु है। आचार्य भक्ति में भी कहा है -

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञानदर्शन नायकाः ।
चारित्रार्णव गंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकः ॥५॥

अर्थात् वे गुरु हमारे लिए हमेशा पवित्रता प्रदान करें जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र के नायक है वे हमारे लिए मोक्ष का मार्ग देकर हमारी आत्मा का कल्याण करें। लेकिन वह गुरु, गुरु नहीं है जो रत्नत्रय से रहित है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि बाहर से कोई मात्र वेश धारण कर ले तो उसके लिए गुरु कह दे, नहीं, उसके लिये भी गुरु नहीं कहा गया है। अब आचार्य महाराज चौथा आश्चर्य प्रकट कर रहे है कि वह सम्पदा / वैभव, सम्पदा नहीं है जिसका सदुपयोग आहार-दान में नहीं किया जाता है। उस सम्पत्ति की कोई विशेषता नहीं है। यदि आपने सम्पत्ति प्राप्त की है तो आहार दान अवश्य देना चाहिए और यदि कुछ भी न हो तो अतिथियों के लिए संविभाग बना कर दान देना चाहिये। और यदि आपने एक ग्रास भी आहार दिया है तो भी आपका सम्पदा का पाना सार्थक है।

बंधुओ ! अकृतपुण्य जो दान की अनुमोदना के प्रभाव से धन्य कुमार हुये थे।

इस प्रकार जो संतों को आहार देता है कराता है उसका भोजन घटता नहीं बढ़ता जाता है। इस प्रकार चारों दानों की महिमा को जान कर सदैव दान देते रहना चाहिए।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक - १७-११-०९
स्थान-तलोद (गुज.)
दिन-मंगलवार

Scanned with CamScanner

प्रव.७ / श्लोक-१९-२३

दान रुपी पुण्य लक्ष्मी

- दान देने से धर्म होता है, धर्म से पुण्य होता है और पुण्य से सारे संसार में उसका आदर-सत्कार होता है, सारे जगत् में यश और प्रसिद्धि फैलती है, सभी उससे प्रेम करते है अर्थात् दान देने से उसे इस लोक में भी लाभ होता है और पर लोक में भी स्वर्ग आदि सुखों की प्राप्ति रुप लाभ होता है।
- यदि आपके पास धन है तो दान दीजिये, निरोगी शरीर है तो संयम धारण कीजिये और यदि शास्त्रों का अभ्यास किया है तो कषायों को जीत लीजिये क्योंकि जो व्यक्ति हमेशा ऐसा करते है उसका जन्म सफल है और जो ऐसा नहीं करते है उसका जन्म केवल सांसारिक दुख, मरण और जन्म के कारणभूत मरण के लिये ही होता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज यहाँ दान की महिमा का वर्णन करते हुये कह रहे है कि सत् पात्रों को दिये गये दान से एक अपूर्व ही उपलब्धि हुआ करती है। और इस प्रकार का व्याख्यान पूज्य आचार्य भगवन् अपने इस प्रकरण में निरन्तर करते चले जा रहे है। वे लिखते है।

किं ते गुणा: किमिह तत्सुखमस्ति लोके सा किं विभूतिरथ या न वश प्रयाति।
दानव्रतादिजनितो यदि मानवस्य धर्मो जगत्त्रयवशीकरणैकमन्त्र: ॥१९॥

अर्थ – यदि मनुष्य के पास तीनों लोकों को वशीभूत करने के लिये अद्वितीय वशीकरण मंत्र के समान दान एवं व्रत आदि से उत्पन्न हुआ धर्म विद्यमान है तो ऐसे कौन से गुण हैं जो उसके वश में न हो सके, वह कौन सा सुख है जो उसको प्राप्त न हो सके, तथा वह कौन सी विभूति है जो उसके आधीन न होती हो ? अर्थात् धर्मात्मा मनुष्य के लिये सब प्रकार के गुण, उत्तम सुख और अनुपम विभूति भी स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।

हे आत्मेच्छुको। पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे है कि तीनों जगत् को वश में करने वाला यदि कोई मंत्र है तो वह मात्र दान और व्रत से उद्भूत होने वाला मानव का पवित्र धर्म है जिससे उर्ध्व लोक, मध्य लोक तथा अधोलोक अर्थात् तीनों लोक के प्राणियों को वश में किया जा सकता है। फिर जिस भाग्यवान्/ पुण्यवान् पुरुष के पास यह दान तथा व्रत से प्रादूर्भत अपूर्व धर्म होता है उसके लिए इस लोक में ऐसे कौन से गुण है जिसे वह प्राप्त न कर सके। अर्थात् जो व्यक्ति निरन्तर सत् पुरुषों के लिये आहार दान देता है उसे हर गुण की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि गुणों की प्राप्ति गुरुओं के पादमूल में हुआ करती है अर्थात् जिन्होंने गुरुओं के चरणों का आश्रय लिया है तो सहज मात्रा में उसके लिये अनेक महान् से महान् गुण प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार इस लोक में ऐसा कौन सा सुख है जो दान से प्राप्त न करता हो अर्थात् सभी सुख, दान धर्म से प्राप्त होते है। दशलक्षण पूजा में भी पढ़ते है

'दान देय मन हरष विशेखे, यह भव जस पर भव सुख पेखे।'

अर्थात् दान देने से मन में विशेष हर्ष / खुशी होती है जिससे इस भव में तथा पर भव में अपूर्व सुख की प्राप्ति होती है और उसकी सारे विश्व में प्रसिद्धि होती है। एक बार किसी व्यक्ति ने पूछा-कि सुख कहाँ से आता है ? मैंने कहा -सुख किसी पत्थर से नहीं आता, किसी बाह्यपदार्थ से नहीं आता तथा किसी वृक्ष से नहीं आता वास्तविकता में

Scanned with CamScanner

सुख तो हमारी आत्मा का धर्म है। गुण है और जो व्यक्ति गुण का आश्रय लेता है वह सुखी हो जाता है उसको सुख की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार जिन्होंने गुरुओं के पादमूल का आश्रय लिया है उसे ही आत्मिक सुख का ज्ञान होता है कि सुख हमारी आत्मा में है किसी बाह्यपदार्थ में नहीं।

एक बार की एक घटना थी कि पुराने समय में एक दादी सुई से कपड़ा सिल रही थी शाम का समय था। कपड़ा सिलते-२ उसके हाथ से सुई गिर गई और वह सुई को खोजने लगी। लेकिन सुई खोजते-२ काफी अंधेरा हो गया, तभी वहाँ से गुजरते हुये एक व्यक्ति ने अम्मा को देखा और पूछा-हे माँ ! तू क्या खोज रही है ? माँ बोली-बेटा मेरी सुई गिर गई है उसे खोज रही हूँ। युवक ने कहा-माँ ! सुई तो गिर गई है लेकिन अब तो अंधेरा हो गया है प्रकाश में खोजोगी तो सुई मिल सकती है अंधेरे में कैसे मिलेगी ? युवक के कहे अनुसार माँ प्रकाश में सुई खोजने लगी लेकिन घर को छोड़ कर रोड में लगे लेम्प के पास। खोजते-२ काफी समय हो गया तब वहाँ से भी एक युवक निकला उसने भी माँ से पूछा- माँ ! क्या खोज रही हो ? उसने कहा-बेटा मेरी सुई गिर गई थी मैं उसे खोज रही हूँ। युवक ने कहा-माँ, सुई कहाँ गिरी थी ? माँ ने कहा-बेटा, सुई तो घर में गिरी थी। युवक-माँ, सुई तुम्हारे घर में गिरी थी और यहाँ खोज रही हो ? माँ - हाँ, बेटा तुम्हारे जैसा ही एक युवक इधर आया था और उसने कहा था सुई अंधेरे में नहीं प्रकाश में खोजो। मेरी झोपड़ी में अंधेरा हो गया था इसलिये मैं प्रकाश में आ गई और सूई को खोज रही हूँ। युवक अम्मा के भोलेपन पर हँसा और बोला-माँ, तू बहुत भोली है। तूने इतना तो सुना कि सूई प्रकाश में खोजना चाहिए लेकिन प्रकाश कहाँ होना चाहिए यह तू भूल गई। जहाँ सूई गिरी थी वहीं प्रकाश होना चाहिए तो तुझे सूई मिलेगी। लेकिन जहाँ सूई गिरी है वहाँ प्रकाश न हो तो सूई कैसे मिलेगी ?

बंधुओ ! हम सभी भी एक ऐसे ही अज्ञानता के संसार में जी रहे है कि हम बाह्यपदार्थों / जगत् में सुख खोजते है। जबकि वहाँ वास्तविकता में सुख नहीं है। यह हमारी भ्रांति है। सुख तो हमारे पास है अर्थात् प्रत्येक प्राणी के अंदर में अपूर्व सुख का भण्डार / समुद्र भरा हुआ है। उस सुख का ज्ञान एक मात्र संतों के द्वारा हो सकता है इसलिये जिसने संतों की उपासना की है मान लो उसने सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त कर लिया है। कहा भी जाता है -

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

धर्म जब मोक्ष सुख दे सकता है तो लौकिक सुख अनाज के साथ भूसा की तरह है अर्थात् लौकिक सुख सहज ही प्राप्त हो जाता है। तथा ऐसा कोई भी पदार्थ शेष नहीं रहता है जो उसको प्राप्त नहीं हो पाता है अर्थात् उसको संसार की सारी उपलब्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाया करती है जो निरन्तर दान देता रहता है। आगे आचार्य महाराज पुनः इसी बात के लिये कहते है-

सत्पात्र दान जनितोन्नतपुण्यराशिरेकत्र वा परजेन नरनाथलक्ष्मीः।
आद्यात्परस्तदपि दुर्गत एव यस्मादागामिकालफलदायि न तस्य किंचित्॥२०॥

अर्थ - एक मनुष्य के पास उत्तम पात्र के लिये दिये गये दान से उत्पन्न हुए उन्नत पुण्य का समुदाय है, तथा दूसरे मनुष्य के पास राज्यलक्ष्मी विद्यमान है। फिर भी प्रथम मनुष्य की अपेक्षा द्वितीय मनुष्य दरिद्र ही है, क्योंकि उसके पास आगामी काल में फल देने वाला कुछ भी शेष नहीं है।

Scanned with CamScanner

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज यहाँ पर दान और धन दोनों की तुलना करते हुये कह रहे है कि सत्पात्रों के दान देने से उत्पन्न पुण्य राशि को तराजू के एक पलड़े पर रखा जाये तथा दूसरे पलड़े पर विभिन्न प्रकार के परिश्रम से प्राप्त हुई मनुष्य की राज लक्ष्मी को रखा जाये और फिर देखा जाए कि वजनदार कौन सी सामग्री होगी ? अर्थात् दान रुपी पुण्य लक्ष्मी या राशि ही वजनदार होगी, क्योंकि **दान देने से धर्म होता है, धर्म से पुण्य होता है और पुण्य से सारे संसार में उसका आदर-सत्कार होता है, सारे जगत् में यश और प्रसिद्धि फैलती है, सभी उससे प्रेम करते है अर्थात् दान देने से उसे इस लोक में भी लाभ होता है और पर लोक में भी स्वर्ग आदि सुखों की प्राप्ति रुप लाभ होता है।** लेकिन राज्य लक्ष्मी से आगामी काल में कोई फायदा नहीं होता है क्योंकि जो व्यक्ति धन को जोड़-२ कर रखता है लेकिन दान नहीं देता है तो वह धन उसे स्वर्ग आदि सुखों को प्राप्त नहीं करता है। क्योंकि धन की तीन गति होती है दान, भोग और नाश। अर्थात् जिसने दान नहीं दिया, भोग नहीं किया उसका धन नाश को प्राप्त होता है। और उस धन के संग्रह से जो लोभ कषाय उत्पन्न हुई थी और उससे जो पाप का संग्रह हुआ था उससे वह धन में नाग के रूप में जन्म ले लेता है। तो कोई व्यन्तर होकर उस धन की रक्षा करता है। इस प्रकार धन से इस लोक और परलोक में कोई फायदा नहीं होता है। इसलिये भगवान से कुछ माँगना पड़े तो भगवान से प्रार्थना करना कि हे भगवन् ! मैं निरन्तर दान देता रहूँ। क्योंकि जो निरन्तर दान देता रहता है उसका घर कभी खाली नहीं होता है। लक्ष्मी उसके घर से कभी विदा नहीं लेती है बल्कि निरन्तर उसके साथ रहती है लेकिन जिस व्यक्ति ने इस प्रकार दान धर्म नहीं माँगा है अपितु हमेशा लक्ष्मी माँगी है वह लक्ष्मी किसी काम की नहीं रहती है। क्योंकि धर्म के बिना धन / लक्ष्मी कष्टदायी हो जाता है। इसलिये आचार्य भगवन् कहते है राज्य लक्ष्मी से श्रेष्ठ, दान लक्ष्मी हुआ करती है। आगे पुन: कहते है-

दानाय यस्य न धनं न वपुर्व्रताय नैवं श्रुतं च परमोपशमाय नित्यम् ।
तज्जन्म केवलमलं मरणाय भूरिसंसारदु:खमृतिजातिनिबन्धनाय ॥२१॥

अर्थ - जिसका धन दान के लिये नहीं है, शरीर व्रत के लिये नहीं है, इसी प्रकार शास्त्राभ्यास कषायों के उत्कृष्ट उपशम के लिये नहीं है। उसका जन्म केवल सांसारिक दु:ख, मरण एवं जन्म के कारणभूत मरण के लिये ही होता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है कि जिसका धन दान के लिए नहीं है अर्थात् धन पाकर भी जिसने दान नहीं दिया है उसका धन का पाना व्यर्थ है और जिसने सुंदर शरीर को पाकर भी व्रत-नियम को धारण नहीं किया है उसके शरीर की सुंदरता की कोई शोभा नहीं है क्योंकि शरीर की शोभा व्रतों से हुआ करती है। इसी प्रकार जिसने खूब शास्त्रों का स्वाध्याय किया लेकिन कषायों का उपशम नहीं किया तो उसने कुछ भी नहीं किया है। अत: आचार्य महाराज ने यहाँ तीन बातें कही है कि **यदि आपके पास धन है तो दान दीजिये, निरोगी शरीर है तो संयम धारण कीजिये और यदि शास्त्रों का अभ्यास किया है तो कषायों को जीत लीजिये क्योंकि जो व्यक्ति हमेशा ऐसा करते है उसका जन्म सफल है और जो ऐसा नहीं करते है उसका जन्म केवल सांसारिक दुख, मरण और जन्म के कारणभूत मरण के लिये ही होता है।** अर्थात् जन्म के बाद मरण और मरण के बाद जन्म की परम्परा का संचालन करने वाला होता है। और संसार में परिभ्रमण करने वाला होता है। तात्पर्य यह है कि पुराने पुण्य के उदय

Scanned with CamScanner

से जो हमारे लिए धन मिला है उसका दान करना चाहिए क्योंकि हर व्यक्ति का हर समय एक सा पुण्य नहीं रहता वह निरन्तर आकाश के बादलों की तरह परिवर्तित होता रहता है।

एक बार पूज्य आचार्य सन्मति सागर जी महाराज ने एक घटना सुनाई थी कि एक सेठ जी थे जो १६ हजार दीनारों के स्वामी थे इसलिये उनके घर की छत पर १६ हजार दीनारों की प्रतीक १६ ध्वाजायें लगाई गई थी। सेठ धर्मात्मा, सरल एवं दयालु प्रकृति के थे तथा समाज उद्धार एवं उपकार के कार्यों में निरन्तर अग्रणीय रहते थे। एक दिन सेठ के मन में विचार आया कि आज मुझे बाजरे की रोटी और छाछ खाना है। जब उसने यह बात कही तो उसकी छोटी बहू समझ गई कि कुछ न कुछ कारण है उसने अपने ससुर से कहा-पिताजी, आप क्या कह रहे हो ? पिताजी-हाँ, बेटा आज मेरी इच्छा हो रही है कि मैं बाजरे की रोटी और छाछ खाऊँ। वह समझ गई कि दिन बदलने वाले है और शायद बाजरे की रोटी और छाछ खाने के दिन आने वाले है। बहू ने कुछ नहीं कहा बस अपने ससुर की आज्ञा का पालन कर उनके लिये व्यवस्था कर दी। लेकिन धीरे-२ उसके व्यापार में हानि होने लगी और रोज एक-२ ध्वाजायें गिरने लगी अब मात्र ८ ध्वाजायें ही शेष रह गई। तब छोटी बहू ने कहा-पिताजी यह क्या हो रहा है ? ससुर-बेटा मुझे भी नहीं पता यह क्या हो रहा है ? बहू-पिताजी, आप मुझे आज्ञा दीजिये कि कल से गद्दी पर मेरी आज्ञा चलेगी। सेठ जी को छोटी बहू से स्नेह था तथा विश्वास भी था तो कहा-ठीक है, आज से तुम्हारा हुकुम गद्दी पर चलेगा। बहू ने कहा-आज बाजार में जितना माल आया है सब खरीद लिया जाए, तथा जो भी भूखा-प्यासा हो उसके लिए भोजनशाला खोल दी जाए अर्थात् उनको भोजन कराया जाये, कोई भी बीमार हो उसके लिए औषधशाला खोल दिया जाए अर्थात् उनका इलाज कराया जाए, यदि कोई बंदी हो तो उन बंदी जीवों छोड़ दिया जाए, अभय दान दिया जाए, सीमा में रहने वाले कर्मचारी किसी भी प्राणी को न सताये, न मारे। इस प्रकार वह रोज नवीन-२ चिंतन करती और परिणाम यह निकला कि सात दिन में ही बाजार की हालत दूसरी हो गई अर्थात् बाजार का भाव धीरे-२ बढ़ गया और काफी मात्रा में वस्तु की माँग होने लगी। तभी एक दिन सेठ जी बोले-बेटा, आज मेरी इच्छा चावल की खीर तथा पूड़ी खाने की हो रही है। बहू समझ गई कि अब समय बदल गया है और उसने ससुर को खीर-पूड़ी बना कर खिलाई। तथा बाजार भाव बढ़ने से गोदाम से माल निकाल कर बेचना शुरु कर दिया और थोड़े ही दिनों में सेठजी के घर की छत पर ३२ ध्वजायें लग गई। तब सेठजी ने बहू से पूछा-बेटा, तूने ऐसा कौन सा मंत्र पढ़ा कि हमारी घटती हुई अवस्था को उतना ही नहीं उससे दूना कर दिया ? बहू-पिताजी, हमारे गुरुओं ने एक बात बतलाई है कि दान देने से धन कभी घटना नहीं है बल्कि निरन्तर बढ़ता रहता है। जैसे बैंक में कोई व्यक्ति रुपया जमा करता है तो उसको ब्याज मिलता है। कहा भी जाता है-

तू एक पैसा देगा वह १० लाख देगा

इस प्रकार दान की महिमा होती है। इसी प्रकार से यदि आपने मनुष्य जीवन पाया है तो संयम धारण कीजिये क्योंकि मनुष्य जीवन की कीमत खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने, तथा नाना प्रकार के व्यवहार से नहीं अपितु निर्वाण से है। धन्य हैं वे व्यक्ति जिन्होंने ऐसे मनुष्य जीवन को पाकर या नर भव को पाकर व्रतों को अंगीकार कर लिया, अपने जीवन को संयम से श्रृंगारित कर लिया अर्थात् मनुष्य जीवन पाकर उन्होंने अच्छे-२ कार्य कर लिये। लेकिन जिसने मनुष्य जीवन को पाकर के उसे दुर्व्यसनों में लगा दिया है पाप कार्यों में लगा दिया है उसके लिये नियम से उसका परिणाम दुख तथा दुर्गतियों के रूप में भोगना पड़ेगा। इसलिये मनुष्य जीवन पाकर संयम को धारण करना

Scanned with CamScanner

चाहिये।

बंधुओ ! आचार्य महाराज ने तीसरी बात कही कि स्वाध्याय करना चाहिये लेकिन ऐसा न हो आज आप स्वाध्याय करें और कुछ समय बाद वह समाप्त हो जाये। कुछ लोग ऐसे होते है जो बहुत शास्त्रों का स्वाध्याय कर लेते है लेकिन अंदर के राग-द्वेष या कषायें नहीं छूट पाती है जिससे उनके जीवन में जरा भी परिवर्तन नहीं आ पाता है। और जिसके जीवन में स्वाध्याय करने के उपरांत भी परिवर्तन नहीं आया तो आचार्य भगवन् कहते है कब परिवर्तन आयेगा ? कैसे उसका हित होगा ? इसलिए हे भव्य ! पुण्य योग से तुम्हें ज्ञान मिला है उस ज्ञान का सदुपयोग कषायों के जीतने में कीजिये और जिसने कषायों को जीत लिया है उसका शास्त्र स्वाध्याय करना सार्थक है अन्यथा संसार की परंपरा जैसे आज तक चलती रही है वैसे ही यह परंपरा भविष्य में भी चलती रहेगी। लेकिन कुछ भी प्रभाव नहीं पडेगा।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है।

प्राप्ते नृजन्मनि तपः परमस्तु जन्तोः संसारसागर समुत्तरणैकसेतुः।
मा भूद्विभूतिरिह बन्धनहेतुरेव देवे गुरौ शमिनि पूजनदानहीना ॥२२॥

अर्थ - मनुष्य जन्म के प्राप्त हो जाने पर भी जीव को उत्तम तप ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, वह संसार रुपी समुद्र से पार होने के लिये अपूर्व पुल के समान है। उसके पास देव, गुरु व मुनि की पूजा और दान से रहित वैभव नहीं होना चाहिए, क्योंकि, ऐसा वैभव एक मात्र बंध का ही कारण होता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे है कि मनुष्य जन्म पाकर के हमारे लिए उत्तम तप के द्वारा, उत्तम व्रतों के द्वारा, उत्तम चारित्र व संयम को धारण करके उसे सार्थक करना चाहिए क्योंकि वह संसार रुपी समुद्र से पार होने के लिये अपूर्व नाव / नौका / पुल है लेकिन जिसने मनुष्य जीवन पाकर पुण्य कार्य नहीं किया वह संसार समुद्र में डूब जाता है जैसे बिना नौका के मनुष्य समुद्र में डूब जाता है वह कभी पार नहीं हो पाता है। इसलिये ज्ञान का सार है व्रतों का धारण करना और मनुष्य जीवन में ही यह सब संभव है। देवतागण व्रतों को धारण नहीं कर पाते इसलिये वे सम्यग्दृष्टि देव मनुष्य जीवन को पाने के लिये तरसते है।

जिस समय तीर्थंकर भगवान को वैराग्य होता है उस समय वैराग्य की अनुमोदना करने के लिये पाँचवें स्वर्ग से लौकांतिक देव आते है जिन्हें देवऋषि कहते है ये बाल ब्रह्मचारी तथा द्वादशांग के पाठी होते है। ये देव भगवान के चरणों में प्रार्थना करते है हे प्रभु ! यदि एक बार भी मुझे मनुष्य जीवन मिल जाये तो हम प्रमाद को छोड़ एक-२ क्षण का सदुपयोग करके संयम को धारण कर तपस्या करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर देगें। जिससे पुनः संसार में जन्म मरण न करना पड़े। क्योंकि यह संयम नरक गति में नहीं होता, तिर्यंच गति में भी एकदेश रुप से होता है मात्र मनुष्य गति में ही सकल संयम होता है। इसलिए तीर्थंकर धन्य है जो मनुष्य जीवन को पाकर सकल संयम रत्नत्रय को धारण करते है और प्रमाद रहित होकर उस रत्नत्रय की कीमत करते है। लेकिन जो रत्नत्रय को पाकर संतुष्ट हो जाये कि अब तो हम मुनि बन गये या घर का त्याग कर दिया या ड्रेस चेंज कर ली अब मुझे क्या करना ? तो आचार्य भगवन् कहते है कि इस भ्रांति में नहीं रहना कि ड्रेस या वेश चेंज हो जाने से कल्याण हो जायेगा। ऐसा नहीं है ड्रेस और वेश चेंज होने के साथ-२ मन को भी बदलना चाहिए। और जिनकी इस प्रकार

Scanned with CamScanner

की प्रक्रिया होती है तो समझ लेना वह मोक्षमार्गी है तथा वह हर क्रिया सावधानता से एवं समयानुसार करे। क्योंकि उसके जीवन में व्रतों का मूल्यांकन होने लगा है। लेकिन जिसके जीवन में व्रतों को तथा तप को धारण करने के बाद भी व्रतों का तथा तप का मूल्यांकन नहीं हुआ उसके लिये व्रत और तप का धारण करना और नहीं धारण करना दोनों समान है।

बंधुओ ! एक बार असंयम में रहने वाला फिर भी धर्म कार्य करके पुण्य कमा लेता है लेकिन जो नियम-संयम तथा व्रतों को धारण करके भी यदि उसका पालन नहीं करता है तो वह पुण्य कम और पाप अधिक कमाता है क्योंकि उसने संयम को धारण करके भी उसकी कीमत नहीं की। दूसरे लोगों की दृष्टि में उसने अपने आपको सम्मानित तो करना चाहा लेकिन अपने उस सम्मान की गरिमा को कायम नहीं रखा। इसलिए मनुष्य जन्म को पाकर संयम को धारण करना चाहिये क्योंकि यही संयम तथा तप मनुष्य को संसार से पार होने के लिए सेतु की तरह है। और जिसके पास यह संयम तथा तप होता है उसके पास देव, गुरु और मुनि की पूजा एवं दान से रहित वैभव नहीं होना चाहिए। क्योंकि जिन्होंने संयम को धारण कर लिया है वे पूजा एवं दान के निमित्त धन आदि द्रव्य को भी नहीं रख सकते है वे मात्र भाव अर्चना, भाव उपासना, भाव स्तुति के द्वारा भगवान की पूजा करते है और यदि जो इसके निमित्त धन-दौलत रखते है तो वह धन-दौलत बंध का ही कारण होती है।

एक बार किसी व्यक्ति ने कहा-महाराज ! हमारा तीर्थक्षेत्र बहुत जीर्णशीर्ण हालत में है किसी लोगों का भी ध्यान उस ओर नहीं है। आप कुछ चंदा करा दीजिये और एक रसीद बुक लाकर मेरे पास रख दी। मैंने कहा-मैं उपदेश दे सकता हूँ कि क्षेत्र का ध्यान रखना चाहिए। रसीद कटाना हमारा धर्म नहीं, रसीद तुमको कटाना होगी और हिसाब-किताब भी तुमको रखना होगा। क्योंकि यदि इन सब में हमारा उपयोग चला गया तो हमारी धर्म साधना नहीं हो पायेगी। इसलिये निर्ग्रन्थ मुद्रा को धारण करने के बाद धार्मिक कार्य के लिए भी रसीद बुक नहीं रखना चाहिये, न कोई हिसाब-किताब। यह सब समाज की जिम्मेदारी है उसका धर्म है कि वह धर्म तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा के लिये रसीद वगैरह रखे। मुनियों का धर्म मात्र उपदेश देना है बाकि नहीं अन्यथा मुनि अवस्था की कीमत नहीं होगी।

एक बार हमने एक महाराज से पूछा-कि आप मुनि क्यों बने ? उन्होंने कहा-धर्म ध्यान के लिए। मैंने कहा-गृहस्थावस्था में भी धर्म ध्यान हो सकता है। बोले - गृहस्थिक जीवन में धर्म ध्यान नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता ? मैंने कहा। बोले-आकुलता-व्याकुलता बहुत रहती है, इतने सारे काम तथा समस्यायें रहती है इसलिये ध्यान नहीं हो सकता है। मैंने कहा-आपका चिंतन बहुत अच्छा है कि गृहस्थिक जीवन में निर्विकल्प ध्यान नहीं हो सकता है इसलिये वे वैरागी हे तत्त्वज्ञानी मुनि बन गये। लेकिन अब सोचना चाहिए कि मुनि बनने के बाद हम कितना आत्म ध्यान या धर्म ध्यान कर रहे है और कर भी रहे है या नहीं कर रहे है। जब यह बात हमारी स्मृति में आ जायेगी तो ध्यान की अवस्था बढ़ जायेगी। फिर हमारा मन किसी अन्य लौकिक कार्यों में रच-पच नहीं पायेगा। अन्यथा जो छोटे से हिसाब-किताब में लग जायेगा वह फिर भगवान को नहीं दान दाता को देखेगा कि कहीं मेरा व्यक्ति चला न जाये। जिससे परिणामों में आकुलता-व्याकुलता हो जायेगी। इसलिये अच्छा है संयम को धारण कर ऐसे काम नहीं करना चाहिए।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज ने पूर्व गाथा में कहा था कि साधुओं को धन की आवश्यकता नहीं है इसलिये उन्हें धन नहीं रखना चाहिए और श्रावक के पास यदि धन है तो दान आदि कार्यों को करना चाहिये। इसी बात को

Scanned with CamScanner

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

भिक्षावरं परिहृताखिल पापकारिकार्यानुबन्धविधुराश्रितचित्तवृत्तिः ।
सत्पात्रदानरहिता विततोग्रदुःख दुर्लङ्घ्य दुर्गतिकरी न पुनर्विभूतिः ॥२३॥

अर्थ - पापोत्पादक समस्त कार्यो के संबंध से रहित ऐसी चित्तवृत्ति का आश्रय करने वाली भिक्षा कहीं श्रेष्ठ है, किन्तु सत्पात्र दान से रहित होकर विपुल एवं तीव्र दुःखों से परिपूर्ण दुर्लघ्य नरकादिरुप दुर्गति को करने वाली विभूति श्रेष्ठ नहीं है।

बंधुओ ! पापोत्पादक समस्त कार्यों से रहित ऐसी चित्त वृत्ति का आश्रय करने वाली भिक्षा कहीं श्रेष्ठ है किन्तु सत्पात्रों के दान से रहित बहुत तीव्र दुखों से परिपूर्ण दुर्लघ्य नरकादिरुप दुर्गति के कारण भूत जो विभूति है-वह श्रेष्ठ नहीं है। कहा जाता है गरीब रहना अच्छा है भिक्षा के द्वारा अपना जीवन यापन करना अच्छा है किन्तु धन-संपदा पाकर उसको दान आदि कार्यों में उपयोग नहीं किया तो ऐसी विभूति का पाना अच्छा नहीं है। दर्शन पाठ में भी कहा गया है।

जिन-धर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि-दरिद्रोऽपि, जिन-धर्मानुवासितः ॥११॥

अर्थात् जिनधर्म से सहित दरिद्रपना या गरीब होना अच्छा है किन्तु जिनधर्म से रहित चक्रवर्ती की सम्पदा श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि सम्पदा को प्राप्त करके यदि दान आदि सत्कार्य नहीं करोगे तो वह दुर्गति का कारण बन जाता है इसलिए हे भव्य ! श्रावकों के लिए निरन्तर सत्पात्रों के लिए दान देते रहना चाहिए और अपने जीवन को सार्थक व सफल करना चाहिए।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान - तलोद (गुज.)
दिनांक-१८-११-०९,
वार - बुधवार

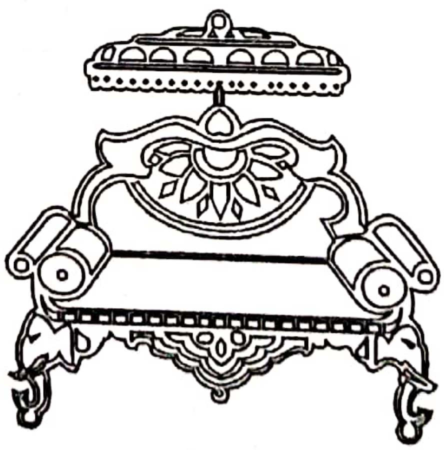

Scanned with CamScanner

प्रव. ८ / श्लोक २४-२९

दान से पुण्य रिजर्व करें

◆ जब तुझे अन्य पर्यायों में जन्म लेने के लिये परलोक में गमन करना पड़े तो उस समय तुम क्या खाली हाथ जाओगे और यदि खाली हाथ जाओगे तो पछताओगे इसलिये वहाँ पर जाने के लिए हे भव्य ! तू दान देकर कम से कम पुण्य का इतना नाश्ता साथ में रख ले कि जिससे परलोक में दुखी न होना पड़े।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज ने पूर्व में बताया था कि श्रावक अवस्था में श्रावकों का प्रधान धर्म मुनियों की आराधना करना है, उनको आहार दान देना एवं सेवा करना है। और यदि आप ऐसा नहीं कर सकते है तो आपको साधु बनना चाहिए। क्योंकि आत्म कल्याण के दो ही तरीके है कि या तो साधु बनो या श्रावक बनकर साधु की सेवा करो और अपने जीवन को सार्थक व सफल करो। इसी बात को पुनः आचार्य महाराज आगे कहते है-

पूजा न चेज्जिनपतेः पदपङ्कजेषु दानं न संयतजनाय च भक्तिपूर्वम् ।
नो दीयते किमु ततः सदनस्थितायाः शीघ्रं जलाञ्जलिरगाधजले प्रविश्य ॥२४॥

अर्थ - जिस गृहस्थ अवस्था में जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों की पूजा नहीं की जाती है तथा भक्ति पूर्वक संयमी जन के लिये दान नहीं दिया जाता है उस गृहस्थ अवस्था के लिये अगाध जल में प्रविष्ट होकर क्या शीघ्र ही जलांजलि नहीं देना चाहिए ? अर्थात् अवश्य देना चाहिए।

बंधुओ ! जिसके घर में या जो गृहस्थ श्रावक जिनेन्द्र भगवान की पूजा / आराधना/उपासना/ नहीं करता है तथा भक्ति पूर्वक संयमी जनों के लिए आहार नहीं देता है और उनके ठहरने के लिए स्थान नहीं देता है उसे अगाध जल में प्रवेश करके जलाञ्जलि दे देना चाहिए। पूज्य आचार्य महाराज ने यहाँ ग्रहस्थ के लिये एक प्रकार का आक्षेप किया है इसलिये ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह गुरुओं की एक प्रेरणा परक मीठी डाँट है कि ऐसे मनुष्य जीवन को पाकर हमारे लिए जिनेन्द्र भगवान की उपासना तथा गुरुओं की सेवा अवश्य करनी चाहिए। आगे पुनः कहते है-

कार्यं तपः परमिह भ्रमता भवाब्धौ, मानुष्यजन्मनि चिरादतिदुःखलब्धे ।
संपद्यते न तदणुव्रतिनापि भाव्यं जायेत चेदहरहः किल पात्रदानम् ॥२५॥

अर्थ - यहाँ संसार रुप समुद्र में परिभ्रमण करते हुए यदि चिरकाल में बड़े दुःख से मनुष्य पर्याय प्राप्त हो गई है तो उसे पाकर उत्कृष्ट तप करना चाहिए। यदि कदाचित् वह तप नहीं किया जा सकता है तो अणुव्रती हो जाना चाहिए जिससे कि प्रतिदिन पात्रदान हो सके।

Scanned with CamScanner

बंधुओ ! अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए यदि किसी विशेष पुण्य के उदय से बहुत बड़े परिश्रम व दुख से मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है ऐसे मनुष्य जीवन को पाकर तप रुपी कार्य करना चाहिए अर्थात् दीक्षा लेकर आत्म साधना / आत्म कल्याण करना चाहिए। और यदि दीक्षा धारण कर मुनि नहीं बन सकते हो तो अणुव्रती बनना चाहिए। और अणुव्रतों में प्रधानव्रत अतिथि संविभागव्रत का पालन करते हुए निरन्तर सत्पुरुषों के लिए आहार दान आदि देना चाहिए।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है -

ग्रामान्तरं व्रजति यः स्वगृहाद्गृहीत्वा पाथेयमुन्नततरं स सुखी मनुष्यः ।
जन्मान्तरं प्रविशतोऽस्य तथा व्रतेन दानेन चार्जितशुभं सुखहेतुरेकम् ॥२६॥

अर्थ - जो मनुष्य अपने गृह से बहुत सा नाश्ता ग्रहण करके दूसरे किसी गाँव को जाता है वह जिस प्रकार सुखी रहता है उसी प्रकार दूसरे जन्म में प्रवेश करने के लिए प्रवास करने वाले इस प्राणी के लिए व्रत एवं दान से कमाया हुआ एक मात्र पुण्य ही सुख का कारण होता है।

बंधुओ ! पुराने समय में जब कोई व्यक्ति घर से बाहर निकलता था तो तीन बातों का ध्यान रखता था पहला एक लोटा और डोरी, दूसरा एक छन्ना एवं तीसरा खाने की कुछ छोटी-मोटी सामग्री साथ में थैले में रखकर चलता था। उस समय की किंवदन्ति थी कि घर से निकलो तो खाली हाथ मत निकलो, भरे हाथ निकलो यानि अपने साथ कुछ नाश्ता आदि की सामग्री लेकर ही निकले। क्योंकि यदि आप बाहर किसी के यहाँ गये और उसने आपको भोजन के लिए नहीं पूछा तो आपको उसके सामने दीनता-हीनता नहीं प्रकट करनी पड़ेगी। आपको कष्ट नहीं उठाने पड़ेगे और आपके पास जो नाश्ता है उससे आप अपनी उदर पूर्ति कर लोंगे। दूसरी बात बड़े परिवार के लोग अपने स्वाभिमान के साथ जाया करते थे कि हम किसी के यहाँ खाने को नहीं आये, खाना तो हम अपने साथ लेकर आये है अन्यथा कहा जाता था व्यक्ति खाने के लिए आया है या घर में खाने को नहीं होगा। इसलिये अपना भोजन अपने साथ लेकर जाते थे भले ही वह उस डिब्बे का नाश्ता कर पाये या नहीं कर पाये लेकिन आत्म संतोष रहता था और सामने वाला भी विशेष ध्यान रखता था कि ऐसा न हो वो अपना नाश्ता कर ले और अपने घर का कुछ भी न खाएँ। लेकिन जो लेकर नहीं आया है उसके लिए व्यक्ति प्रमाद भी कर सकता है कि अभी आप थोड़ा ओर रुकिये और उसे भोजन की इंतजारी में दीनता का परिचय देना पड़ता यानि भोजन के लिए इंतजार करना पड़ता है। इसलिये पुराने समय में व्यक्ति अपना नाश्ता लेकर जाया करता था और सुखी रहता था। आचार्य भगवन् भी यही बात कह रहे है कि अन्य ग्राम में जाने के समय व्यक्ति अपने ही घर से श्रेष्ठ पाथेय यानि रास्ते का नाश्ता लेकर के जाता था तो वह मनुष्य सुखी माना जाता था सुखी रहता था ठीक इसी प्रकार से जब तुझे अन्य पर्यायों में जन्म लेने के लिये परलोक में गमन करना पड़े तो उस समय तुम क्या खाली हाथ जाओगे और यदि खाली हाथ जाओगे तो पछताओगे इसलिये वहाँ पर जाने के लिए हे भव्य ! तू दान देकर कम से कम पुण्य का इतना नाश्ता साथ में रख ले कि जिससे परलोक में दुखी न होना पड़े। पछतावा न करना पड़े। भूखे-प्यासे न रहना पड़े। क्योंकि

Scanned with CamScanner

दान से कमाया गया पुण्य ही व्यक्ति को सुखमय बनाता है, शांति मय बनाता है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

यत्नः कृतोऽपि मदनार्थयशोनिमित्तं दैवादिय व्रजति निष्फलतां कदाचित् ।
संकल्पमात्रमपि दानविधौ तु पुण्यं कुर्यादसत्यपि हि पात्रजने प्रमोदात् ॥२७॥

अर्थ - यहाँ काम, अर्थ और यश के लिये किया गया प्रयत्न भाग्यवश कदाचित् निष्फल भी हो जाता है। किन्तु पात्र जन के अभाव में भी हर्ष पूर्वक दान के अनुष्ठान में किया गया संकल्प भी पुण्य को करता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है यदि यहाँ पर काम, अर्थ और यश के लिए कुछ भी प्रयत्न किया जाये लेकिन भाग्य अनुकूल नहीं है या सही पुण्य का उदय नहीं है तो सारा प्रयल निष्फल हो जाता है लेकिन पात्रदान का मात्र संकल्प ही जिस व्यक्ति ने हर्ष पूर्वक पात्र के अभाव में ले लिया है तो वह महान पुण्य को प्रदान करता है।

प्राचीन काल की एक ऐसी परम्परा है जिसे आज भी कुछ लोग पालन करते है कि १२ व्रतों का पालन करने वाले व्रती श्रावक जब अतिथि संविभाग व्रत का पालन करते है। उसके विषय में छहढ़ाला की चौथी ढाल में पं.दौलतराम जी कहते है **मुनि को भोजन देय फिर निज कहिं आहारै ॥१३॥**

अर्थात् मुनियों को आहार देने के बाद ही भोजन करते है। यह उत्तम तरीका है लेकिन जहाँ मुनिजन नहीं होते है वहाँ भी वे श्रावक अपने व्रत का पालन करते है कि अपने घर के दरवाजे के सामने चौक लगा कर भोजन करने के पूर्व मंगल सामग्री लेकर या हाथ जोड़कर द्वाराप्रेक्षण करते है यानि दरवाजे पर खड़े होकर इंतजारी करते है कि पुण्य के उदय से कोई मुनिराज प्राप्त हो जाए तो पहले उनको आहार दूँगा पश्चात् स्वयं आहार करूँगा। कभी-२ पुण्य का उदय अच्छा हो तो मुनिराज मिल जाया करते है।

पद्मपुराण में उल्लेख मिलता है कि दण्डक वन में सीता ने आहार की सारी सामग्री तैयार कर ली और विचार मग्न हो गई कि अगर कोई सत्पात्र यहाँ पर होते तो मैं उन्हें पहले आहार देती फिर भोजन करती और सीता ने यह बात राम से कही। राम भी सीता की बात को सुन कर प्रसन्न हुये और कहा-मुनि मिले या न मिले लेकिन अपने लिये इंतजारी तो करना ही चाहिए। और इसी भावना एवं प्रार्थना के साथ दोनों खड़े हो गये है इस इंतजारी में कि मुझे कोई मुनिराज मिल जाए तो मेरा बहुत बड़ा पुण्य होगा जिससे मैं पहले उन्हें आहार दूँगा फिर भोजन करूँगा। और वे दोनों ऐसा विचार कर ही रहे थे कि अचानक आकाश से दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आते हुए रुक गये। बंधुओ ! जब किसी का विशेष पुण्य / भाग्य जगता है तो दुर्लभ सत्पात्रों का लाभ मिलता है। मुनिराज को देखते ही दोनों खुश हो गये और उनका नवधा भक्ति पूर्वक आहार कराया। पश्चात् मुनिराज अपने स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

बंधुओ ! वज्रजंघ चक्रवर्ती एवं उनकी श्रीमती नाम की पत्नि के विषय में भी उल्लेख मिलता है कि उन्होंने भी ऐसी भावना भाकर जंगल में मुनिराज को आहार कराया था उसी का जातिस्मरण ही भविष्य में ऋषभदेव के आहार

Scanned with CamScanner

का निमित्त बना था। इसलिये नगर में संत हो या न हो तो भी पड़गाहन के लिये खड़े होना चाहिए। बुंदेलखण्ड व राजस्थान आदि स्थानों में कुछ व्रती ऐसे है जो संत के न होने पर भी पड़गाहन करते है और अपने भाग्य की परीक्षा करते है कि मिल गये तो खुशी मनाते है और नहीं मिले तो पड़गाहन करके अपने व्रत को पूर्ण करते है कि हमारा व्रत का पालन अच्छी तरह से हो गया। इसलिये आचार्य महाराज कहते है कि ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि पात्र नहीं है तो क्यों पड़गाहन करना ? नहीं। आपका व्रत है और उस व्रत के अनुसार द्वाराप्रेक्षण करना चाहिए।

बुंदेलखण्ड में एक परम्परा ओर है कि रक्षाबंधन के दिन बहुत सारे श्रावक अपने घर के दरवाजे पर एक चित्र बनाते है जिसके अंदर चावल की खीर आदि जो सामग्री बनाते है उसमें लगा देते है। एक बार ऐसा ही हुआ जब हम ग्रहस्थावस्था में थे तो मम्मी ऐसा कर रहीं थी मैंने पूछा-आप ऐसा क्यों कर रही हो ? ये क्या चीज है ? उन्होंने कहा- कि यहाँ पर कोई मुनिराज नहीं है तो यहाँ पर ऐसा निशान बनाकर कल्पना करते है कि हमने महाराज का पड़गाहन कर लिया है और उनको खीर का आहार दे दिया है। ऐसा भाव करके आदर और भक्ति कर लेते है। कभी-२ व्रती श्रावक जिस समय भोजन करने बैठते है उस समय हाथ धोने के बाद हाथ जोड़ लेते है और भगवान से प्रार्थना करते है कि हे भगवन् ! ढाईद्वीप में जहाँ-२ रत्नत्रय को धारण करने वाले निर्ग्रंथ गुरुराज हो उनके रत्नत्रय की निरन्तर साधना के लिए निरन्तराय व निर्विघ्न आहार हो, पश्चात् भोजन प्रारम्भ करते है। इस प्रकार अलग-२ देशों में अलग-२ प्रकार की परम्परा होती है। जिससे व्रती श्रावक आहार दान का संकल्प मात्र करके भी असीम पुण्य को प्राप्त कर लेता है ऐसे दान की अपूर्व महिमा है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

सद्मागते किल विपक्षजनेऽपि सन्तः कुर्वन्ति मानमतुलं वचनासनाद्यैः।
यत्तत्र चारुगुणरत्ननिधानभूते पात्रे मुदा महति किं क्रियते न शिष्टैः ॥२८॥

अर्थ - अपने मकान में शत्रु जन के भी आने पर सज्जन मनुष्य वचन एवं आसन प्रदानादि के द्वारा उसका अनुपम आदर-सत्कार करते हैं। फिर भला उत्तम गुणों रुप रत्नों के आश्रय भूत उत्कृष्ट पात्र के वहाँ पहुँचने पर सज्जन हर्ष से क्या आदर-सत्कार नहीं करते हैं ? अर्थात् अवश्य ही वे दानादि के द्वारा उसका यथायोग्य सम्मान करते हैं।

बंधुओ ! जब चुनाव होते है तो एक वार्ड से लगभग दो व्यक्ति खड़े होते है यानि एक पक्ष पार्टी से तो दूसरा विपक्ष पार्टी से। लेकिन उनमें कुछ ऐसे नेता होते है जो विपक्ष पार्टी के होने पर भी आपस में शत्रु भाव नहीं रखते है, बैर विरोध नहीं रखते है। एक बार भिण्ड में जब हम लोग थे तो वहाँ चुनाव का समय था वहाँ लगभग ४०-५० हजार जैन घर की समाज एवं ४०-४२ मंदिर है। तो हर पार्टी के नेतागण जैन साधुओं से आशीर्वाद लेने जरुर आते थे। एक बार एक ऐसी स्थिति खड़ी हो गई कि पक्ष का नेता और उसी समय विपक्ष का नेता भी आया। आने के बाद संचालक महोदय उनका सम्मान करने के लिये किसी दूसरे को बुला रहे थे तो मैंने कहा-किसी को नहीं, दो नेता है दोनों को एक-दूसरे का सम्मान करने के लिए बुला लीजिए तो अच्छा रहेगा। वे आज एक-दूसरे का सम्मान करेंगे तो कालान्तर में भी इनके अंदर प्रेम व्यवहार बना रहेगा। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और

Scanned with CamScanner

दोनों नेताओं ने खड़े होकर एक-दूसरे का सम्मान किया। मैंने कहा-माल्यार्पण ही नहीं करना है बल्कि जब वोट का समय आये तो आपस में एक दूसरे के लिये वोट भी डालना है। उन्होंने कहा-मुझे कुछ आज्ञा व आशीर्वाद दीजिये ? मैंने कहा- बस यही आज्ञा है। और उन्होंने जब वोट डाले तो एक दूसरे के लिए वोट डाले और उसका परिणाम इतना अच्छा निकला कि एक पार्टी के जीतने पर भी दोनों में प्रेम था। पश्चात जब कोई भी कार्यक्रम होता तो दोनों नेता आते और आपस में बैठते थे। कहने का तात्पर्य है कि लोक व्यवहार में भी एक-दूसरे के आदर-सम्मान का ध्यान रखा जाता है। लेकिन इसका अर्थ इतना ही नहीं कि वह सब ही विपक्ष वाले है विपक्ष का अर्थ विरोधी भी होता है यानि जो शत्रु है अपने से विरोध करने वाला है ऐसा भी शत्रु यदि अपने घर में आ जाए तो यथोचित् उसका आदर-सम्मान करना चाहिए। क्योंकि शत्रुता, शत्रुता के स्थान पर होती है। बतलाते है कि जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ उस समय दिन में युद्ध हुआ करता था लेकिन शाम के समय जब युद्ध समाप्त हो जाता था तो सैनिक एक-दूसरे के समुदाय में जाकर एक-दूसरे की सेवा, मलहम-पट्टी आदि किया करते थे। अर्थात् उस समय भी गरिमा और मर्यादा का ध्यान रखा जाता था। आज भी यदि कोई व्यक्ति शत्रु देश से आता है तो उसके साथ अनुचित व्यवहार नहीं किया जाता है। यदि वह विश्वासनीय है और बोलकर आया है तो उसका सम्मान किया जाता है।

बंधुओ ! हनुमान जब लंका में रावण के पास पहुँचे तो रावण ने उन्हें यथोचित् आसन दिया था कि आप यहाँ पर बैठिये फिर हमसे चर्चा कीजिये। पूज्य आचार्य महाराज यहाँ पर यही बात कर रहे है कि यदि आपके घर में कोई शत्रु के आ जाने पर भी उसका वचन एवं आसन प्रदान करके यथोचित् आदर किया जाता है फिर यदि आपके घर में श्रेष्ठ रत्नत्रय आदि अनेक गुणों के निधान (खजाने) स्वरुप सत्पात्र आ जाये तो उनको देखकर ऐसा कौन सा सदाचारी मनुष्य होगा जो उनका प्रसन्न मुद्रा के द्वारा सत्कार नहीं करेगा ? अर्थात् अवश्य करेगा और उनको नवधा भक्ति पूर्वक आहार देगा।

बंधुओ ! जब हमारा संघ गुजरात में विहार कर रहा था उस समय रास्ते में कुछ ऐसे स्थान मिले जहाँ स्कूल बहुत छोटा और संघ बड़ा तो काम कैसे चलेगा ? संघ बड़ा तो बड़ी व्यवस्था भी चाहिए। और एक बार ऐसा ही हुआ कि जगह कम होने से लोगों ने किसी के घर में व्यवस्था बना दी। और उस परिवार के लोग छोटे-२ बच्चों को लेकर वृक्ष के नीचे बैठे थे। मैंने पूछा-आप कौन है, कहाँ से आये है ? उन्होंने कहा-महाराज, यह मेरा ही मकान है। मैंने कहा-तुम्हारा ही मकान है फिर तुम बाहर कैसे बैठे हो ? बोले-नहीं, महाराज श्री आप लोग यहाँ रह रहे है इसकी मुझको बड़ी खुशी है। मैंने कहा-बच्चे छोटे-२ है खाना खाया या नहीं खाया। बोले-नहीं, कोई बात नहीं सब हो जायेगा बाद में। मैंने तुरन्त संघपति जी को बुलाया और कहा-उन्होंने तुम्हें मकान दिया है ठहरने के लिए, चौका लगाने के लिए, तो तुमको भी उनका ध्यान रखना चाहिए। महाराजों को बोला अपन सभी एक कमरे में रुक जाइये और एक कमरा उनके लिए छोड़ दीजिये।

इसी प्रकार एकदिन शाम के विहार के बाद एक स्कूल की टीचर एक कमरा खोल कर शेष सभी कमरों का ताला लगाकर दूसरे गाँव चली गई। अब एक कमरे में तो महाराज माता जी नहीं रह सकते है। परिणाम यह निकला

Scanned with CamScanner

कि काफी सोच-विचार एवं खोजबीन के बाद एक घर में गये और कहा यदि आपके घर में कोई कमरा खाली हो तो हमारे महाराज ठहरना चाहते है वे रात भर रुकेंगे और प्रातः होते ही चले जायेंगे। घर में ब्राह्मण नहीं था उसकी पत्नि ब्राह्मणी थी जो खाना बना रही थी वह अत्यन्त श्रद्धालु थी उसने खाना बनाना बंद कर दिया और कहा-महाराज को यहाँ पर ठहरा दीजिये, हम दूसरे के मकान में रुक जायेंगे। मैंने उसको देखा और कहा-वह खाना बना रही है अपने को ऐसे समय में एसे स्थान पर रुकना ठीक नहीं है उसको खाना वगैरह भी खाना होगा आदि। ब्राह्मणी बोली-आप बिल्कुल चिंता मत कीजिये और उसने वैसा ही कच्चा-पक्का सामान लिया और दूसरे के मकान में चली गई। इस प्रकार वह पूरा घर भरा हुआ ऐसे ही छोड़ कर चली गई। वह भले ही जैन नहीं थी लेकिन जैन संतों के प्रति आदर व सम्मान का भाव रखती थी। इस प्रकार ऐसे श्रद्धालु व्यक्ति बहुत कुछ प्राप्त कर लेते है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज यहाँ पर यही बात कह रहे है ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो अपने घर में आये हुए सत्पात्रों के लिए प्रसन्नता के साथ आहार न देता होगा ? अर्थात् अवश्य ही देता होगा। क्योंकि प्रसन्नता के साथ दिया गया रुखा-सूखा, नीरस आहार भी सरस व इष्ट हो जाता है और बिना मन से रुष्ट होकर के सरस आहार भी क्यों न दिया जाये तो भी वह नीरस हो जाता है। एक बार एक सज्जन मेरे पास आये जो मुझे आहार देना चाहते थे लेकिन उनका मुख बना हुआ था मैंने कहा-अमुक महाराज को आहार दे आओ। उस समय उन्होंने कुछ नहीं कहा आहार के बाद बोले-महाराज, मुझ से क्या गल्ति हो गई थी जो मुझसे आपने आहार नहीं लिया ? मैंने कहा-आप प्रसन्न नहीं थे, यदि आप प्रसन्न होते तो फिर आप जाते भी तो मैं कह देता आप खड़े रहिये, कोई बात नहीं। क्योंकि यदि आप प्रसन्न मुद्रा से आहार दोंगे तो साधु भी प्रसन्न रहेंगे और अप्रसन्नता से दोंगे तो साधना का सारा माहौल अप्रसन्न हो जायेगा। इसलिये शिष्ट पुरुष आनंद के साथ हर्षित होकर दान आदि कार्य करते है। आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

सूनोर्मृतेरपि दिनं न सतस्तथा स्याद् बाधाकरं बत तथा मुनिदानशून्यम् ।
दुर्वारदुष्टविधिना न कृते ह्यकार्ये पुंसा कृते तु मनुते मतिमाननिष्टम् ॥२१॥

अर्थ - सज्जन पुरुष के लिए अपने पुत्र की मृत्यु का भी दिन उतना बाधक नहीं होता जितना कि मुनिदान से रहित दिन उसके लिए बाधक होता है। ठीक है-दुर्निवार दुष्ट दैव के द्वारा कुत्सित कार्य के किये जाने पर बुद्धिमान् मनुष्य उसे अनिष्ट नहीं मानता, किन्तु पुरुष के द्वारा ऐसे किसी कार्य के किये जाने पर विवेकी प्राणी उसे अनिष्ट मानता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि घर में सबसे प्रिय, पुत्र माना जाता है लेकिन किसी दुर्भाग्यवश पुत्र का वियोग हो जाये तो ज्ञानी व्यक्ति क्षण भर का संयोग था या जब तक का संयोग था तब तक संयोग रहा और वह समय समाप्त हो गया तो वियोग हो गया ऐसा सोच करके शांति रख लेता है। अर्थात् पुत्र के वियोग हो जाने पर उसके लिए उतना दुख नहीं होता है जितना दुख पात्र की प्राप्ति नहीं होने पर होता है अर्थात् असीम दुख होता है कि आज मुझे सत्पात्र की प्राप्ति नहीं हुई। भरतेश वैभव में भरत चक्रवर्ती के विषय में उल्लेख है कि भरत चक्रवर्ती एक बार द्वाराप्रेक्षण के लिये खड़ा हुआ लेकिन कोई पात्र नहीं मिला। पात्र न मिलने से भरत चक्रवर्ती बार-२ अपने हाथ को देखते और आखों से आँसू ढालते है। तभी पास में खड़े परिजन एवं मंत्री गण पूछते है कि- महाराज आपके

Scanned with CamScanner

लिए क्या हो गया ? क्या आपके हाथ में पीड़ा है जो आप बार-२ हाथ को देख रहे हो ? या किसी ने आपसे कुछ कह दिया है ? या आपके लिए किसी ने पराजय कर दिया है ? भरत कहते है-आज मेरे हाथ बहुत खराब दिख रहे है, शोभा विहीन दिख रहे है। लोग समझाते-महाराज आपके हाथ बहुत सुंदर है क्योंकि उनमें बहूमूल्य आभूषण है। चक्रवर्ती कहते है-हाथ की शोभा कंगन, मुद्रिका आदि आभूषण के पहनने से नहीं अपितु हाथ की शोभा दान देने से है। आज इन हाथों ने दान नहीं दिया है इसलिए सारे आभूषण होने पर भी मुझे आभूषण विहीन जैसे दिख रहे है, शोभा विहीन दिख रहे है। आज जैसा दुख व कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ जितना आज हो रहा है कि सत्पात्रों के लिए इन हाथों ने आहार नहीं दिया तो मैं कैसे इन हाथों से भोजन करूँ ? भरतेश विचार मग्न हो जाते है और भोजन के लिए तैयार नहीं होते।

बंधुओ ! सुभद्रा जो भरत चक्रवर्ती की पटरानी थी वह उनके लिए बार-२ समझाती है कि- हे नाथ ! हर व्यक्ति का अपना-२ कर्म होता है अपने भी दानान्तराय कर्म का उदय होगा इसलिये आज अपना ऐसा दिन आया है कि अपने को कोई भी सत्पात्र का लाभ नहीं मिला। आप चिंता मत कीजिए, कर्म हमेशा एक जैसा नहीं रहता है हम पड़गाहन के लिए खड़े थे तो अपने लिए दान का फल तो मिल ही गया है। क्योंकि जो व्यक्ति प्रमाद को छोड़कर द्वाराप्रेक्षण करता है उसके लिए दान का फल उसी समय मिल गया है ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार सुभद्रा समझाती है और भरत, सुभद्रा की ओर देखते है कि सुभद्रा क्या कह रही है ? वह कहती है- हाँ स्वामी, पड़गाहन के लिये खड़े थे यह हमारे कर्म का उदय कि हमको अवसर नहीं मिला लेकिन पुण्य यह है कि हमारे भाव अच्छे रहे है इसलिये बिना दान दिये ही दान देने का फल तो हमको मिल ही गया है इसलिए आप भोजन कीजिए। इस प्रकार सुभद्रा अनेक प्रकार की युक्तियों से, अनेक प्रकार के अच्छे-२ मिष्ट वाक्यों के द्वारा भरत के मन को प्रसन्न करती है और भरत भोजन के लिए तैयार हो जाते है। लेकिन फिर भी भरत कहते है कि आज मुझे भोजन में वह आनंद नहीं आया जो आज तक आता रहा है। तभी रसोईया आकर खड़ा हो जाता है हे भगवन् ! जैसा भोजन रोज बनाते थे वैसा ही भोजन आज बनाया है और आपके भोजन के लिये तो १-२ नहीं ३६० रसोईया तैयार करते है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है ? भरत कहते है-स्वाद तो सबसे बड़ा दान का आता है। जब हम दान देते है तो उस समय अपूर्व ही स्वाद आता है और जिस दिन दान नहीं देते है उस दिन सारे स्वादिष्ट आहार का भी स्वाद नहीं आता है। इसी प्रकार जिस दिन रामचंद्र जी ने जंगल में आहार दान दिया था तो उन्होंने भी यही कहा था कि आज मुझे आहार बहुत स्वादिष्ट एवं सरस लग रहा है। लक्ष्मण ने पूछा-भईया भोजन तो पूरा नीरस है फिर आपको सरस कैसे लग रहा है ? राम ने कहा-भईया, यह आहार मुनियों को दिये गये आहार दान के बाद का बचा हुआ अवशेष भाग है इसलिये इसके खाने में बहुत हो आनंद आ रहा है और स्वादिष्ट लग रहा है। इस प्रकार पूज्य आचार्य महाराज आहार दान की अपूर्व महिमा को गा रहे है। अतः हम अपने जीवन में निरन्तर आहार दान की भावना भाते हुये आहार दान दे।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान-तलोद (गुज.)
दिनांक १९-११-०९
वार - गुरुवार

प्रव. ९ / श्लोक ३०-३६

यश और सुख का कारण दान

◆ दान देन से संसार में प्रसिद्धि होती है और परलोक में सुख होता है और जो ऐसा दान सम्यक् प्रकार से नहीं देता है तो समझना चाहिये कि वह किसी के यहाँ सुरक्षा के लिये रखे गये धन की रखवाली करता है। फिर आपका धन का संचय करना सार्थक नही है, उस धन से सही फल प्राप्त नहीं होता।

बंधुओ ! परमोपकारी परम पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज के 'पद्मनंदि पञ्चविंशतिः' ग्रंथ में दानोपदेश अधिकार श्रावकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसमें आचार्य श्री ने दान की गहरी-गहरी श्रेष्ठतम् बात कही जो निश्चित ही हमारे मन को प्रभावित करती है, जिससे जीवन परिवर्तित होता है, आत्मा पर प्रभाव पड़ता है, अज्ञान दूर एवं ज्ञान का प्रकाश होता है, आचरण में निखार आता है इसलिये यहाँ विशद् व्याख्यान किया जा रहा है। कल कहाँ था कि भक्त मन / हृदय पुत्र के वियोग होने पर दुखी नहीं होता है जितना सत्पात्र के न मिलने पर होता है इसलिये उसे पुत्र से अधिक कीमत सत्पात्र की होती है। आगे आचार्य महाराज पुनः कह रहे है।

ये धर्मकारण समुल्लसिता विकल्पास्त्यागेन ते धनयुतस्य भवन्ति सत्याः ।
स्पृष्टाः शशाङ्ककिरणैरमृतं क्षरन्तश्चन्द्रोपलाः किल लभन्त इह प्रतिष्ठाम् ॥३०॥

अर्थ - धर्म के साधनार्थ जो विकल्प उत्पन्न होते हैं वे धनवान् मनुष्य के दान के द्वारा सत्य होते हैं। ठीक है-चन्द्रकांत मणि चन्द्र किरणों से स्पर्शित होकर अमृत को बहाते हुए ही यहाँ प्रतिष्ठा को प्राप्त होती हैं।

हे आत्मेच्छुक ! आचार्य महाराज कह रहे है कि साधर्मियों के मन में विभिन्न प्रकार से धर्म की साधना करने के लिये जो नाना प्रकार के शुभ विकल्प होते है वे दान के कारण से होते है। क्योंकि वह जब दान देता है तो सत्पात्र के चरणों के समीप बैठता है, उनको आहार दान देता है, सेवा-वैय्यावृत्ति करता है जिससे उसके मन में अच्छे-२ विचार उत्पन्न होते है। कहा जाता है - जो जैसी संगति में बैठता है उसके मन में वैसे विचार आना प्रारंभ होते है। क्योंकि जब हम महापुरुष की संगति में बैठते है तो हमारे अंदर त्याग-तप, साधना के सहज विचार होते है। जैसे एक बालक जब माँ की अंगुली पकड़ कर मंदिर जाता है तो भगवान को देखकर वह माँ से बहुत सारे प्रश्न करता है। और उसकी माँ जैसी-२ क्रिया करती है वह भी वैसी-२ क्रिया करता है जबकि वह उस क्रिया के फल से अनभिज्ञ है। लेकिन जब वही बालक टी.वी. के पास बैठता है तो उसमें दिखने वाले लोग जैसा करते है वह वैसे ही हाथ-पेर चलाता है। इसलिये आचार्य भगवन् कहते है कि हमें सदैव संत समागम करना चाहिये, उनके दर्शन करना चाहिए, उनके चरणों में बैठना चाहिए। क्योंकि संत कुछ कहे या नहीं कहें तो भी उनकी मौन मुद्रा हमारे लिए मोक्षमार्ग का उपदेश देती है। सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद महाराज कहते है - अवाग्विसर्ग वपुषा निरूपयन्तं।
अर्थात् वे वचन बोले बिना ही, मात्र अपने शरीर की आकृति से मूर्तिमान् मोक्षमार्ग का निरुपण करते है।

उनके दर्शन से मन पावन-पवित्र हो जाता है यही उनके दर्शन की महिमा है। ऐसे महिमा सम्पन्न संतों को जो

Scanned with CamScanner

दान देता है उतने समय तक मन में अच्छे-२ विचार उत्पन्न होते है, मन उत्कण्ठित होता है कि मैं अमुक-२ नियम लूँगा, उनका पालन करूँगा। और नियम लेने के बाद वह सोचता है अब मैं रोज आहार दूँगा। तीर्थ क्षेत्र पर भी जाऊँगा तो वहाँ भी दान दूँगा। और कुछ ऐसे भी भव्य होते है जो दान देते समय विचार करते है कि ऐसा मेरा भी दिन आयेगा जब मैं पाणीपात्र में आहार करूँगा, रत्नत्रय का पालन करूँगा, आत्मा का कल्याण करूँगा। यहाँ उदाहरण देते हुये आचार्य महाराज कह रहे कि जैसे चद्रकांत मणि की, मणि की परीक्षा चन्द्रमा के सम्मुख रखने से होती है अन्य समय में नहीं। कारण कि चन्द्रमा के सम्मुख रखने से उसमें से पानी झरने लगता है ठीक इसी प्रकार भव्यों के अन्तर मन की परीक्षा संत समागम से होती है कि संत समागम होते ही शुभ विचार होने लगते है।

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है-

मन्दायते य इह दानविधौ धनेऽपि सत्यात्मनो वदति धार्मिकतां च यत्तत्।
माया हृदि स्फुरति सा मनुजस्य तस्य या जायते तडिदमुत्र सुखाचलेषु ॥३१॥

अर्थ - जो मनुष्य धन के रहने पर भी दान देने में उत्सुक तो नहीं होता, परन्तु अपनी धार्मिकता को प्रगट करता है उसके हृदय में जो कुटिलता रहती है वह परलोक में उसके सुखरूपी पर्वतों के विनाश के लिये बिजली का काम करती है।

बंधुओ ! जिसके पास धन नहीं होता ऐसा भक्त श्रावक रूखा-सूखा आहार दान देकर भी आत्म संतोष करता है लेकिन धनवान् होने पर यदि कोई दान देने में आलस्य, प्रमाद करता है, उत्साहित नहीं होता (अथवा समाज के बीच में अपनी धार्मिकता प्रगट करता है) ऐसा मनुष्य अंदर में मायाचारी/छलकपट करता है / अर्थात् क्षमता होने पर भी दान नहीं देता और लोगों में धार्मिकता बताता है समझ लेना ऐसा व्यक्ति उसी प्रकार से है जैसे पर्वत के ऊ पर बिजली गिरने पर पर्वत नष्ट होता है वैसे ही धन रुपी पर्वत मायारुपी बिजली के गिरने से नष्ट हो जाता है। उसे सुख-शांति नहीं मिलती। इसलिये यदि हम समर्थ है तो निरन्तर सत्पात्रों को दान देते रहे। जिससे जीवन आनंदमय हो।

आगे पुनः आचार्य महाराज कह रहे है-

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव तस्यापि संततमणुव्रतिना यथर्द्धि।
इच्छानुरुपमिह कस्य कदात्र लोके द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः ॥३२॥

अर्थ - अणुव्रती श्रावक को निरन्तर अपनी सम्पत्ति के अनुसार एक ग्रास, आधा ग्रास अथवा उसके भी आधे भाग को भी दान देना चाहिये। कारण यह है कि यहाँ लोक में अपनी इच्छानुसार द्रव्य किसके किस समय होगा जो कि उत्तम पात्रदान का कारण हो सके, यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

बंधुओ ! यहाँ आचार्य महाराज दान देने की प्रेरणा देते हुये कहते है कि निरंतर सत्पात्रों को दान देना चाहिये ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि जब धन होगा, जब हम समर्थ होगें तब दान देगें। लेकिन समय का भरोसा नहीं, आज जो तुम्हारे पास है वह कल रहेगा या नहीं। लेकिन कितना देना चाहिये ? तो कहते है अणुव्रती श्रावक को अपनी सम्पत्ति के अनुसार एक ग्रास देना चाहिये और यदि उतना देने में भी समर्थ न हो तो आधा ग्रास देना चाहिये और यदिं इतनी भी सामर्थ्य न हो तो आधे से भी आधा ग्रास दान करना चाहिये। और जो इतना भी दान करता है तो

Scanned with CamScanner

उसकी बहुत बड़ी महिमा शास्त्रों में कही गई। अकृतपुण्य की माँ जिसने मुनिराज को आहार देने के लिये खीर के तीन हिस्से बनाये थे कि मैं एक हिस्सा मुनिराज को आहार में दूँगी, दूसरा हिस्सा अकृतपुण्य के लिये तथा तीसरा हिस्सा हमारे लिये होगा। माँ ने आहार देना प्रारम्भ किया तो धर्म का चमत्कार हो गया कि जिसे वह एक ग्रास समझ रही थी उससे कितने ग्रास उत्पन्न हो गये कि कितने सारे लोग भोजन कर गये लेकिन भोजन घटा नहीं। क्योंकि दान देने से घटता नहीं और जो इस भरोसे बैठा रहता है कि अमुक सामग्री होगी तो दूँगा, ऐसा व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। इसलिये सदैव जितना जैसा हो उसका उपयोग करते रहना चाहिये। क्योंकि संसार में अपनी इच्छानुसार धन, दान करने के लिये किसके पास किस समय होगा जो कि उत्तम पात्र दान का कारण हो सके, यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

> **मिथ्यादृशोऽपि रुचिरेव मुनीन्द्रदाने दद्यात् पशोरपि हि जन्म सुभोगभूमौ।**
> **कल्पांघ्रिपा ददति यत्र सदेप्सितानि सर्वाणि तत्र विदधाति न किं सुदृष्टेः ॥३३॥**

अर्थ - मिथ्यादृष्टि पशु की भी मुनिराज के लिये दान में जो केवल रुचि होती है उससे भी वह उस उत्तम भोगभूमि में जन्म लेता है जहाँ पर कि कल्पवृक्ष सदा उसे सभी प्रकार के अभीष्ट पदार्थों को देते हैं। फिर भला यदि सम्यग्दृष्टि उस पात्र दान में रुचि रक्खे तो उसे क्या नहीं प्राप्त होता है ? अर्थात् उसे तो निश्चित ही वांछित फल प्राप्त होता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है कि मिथ्यादृष्टि पशु भी यदि मुनिराज के आहार देखता है, उसकी अनुमोदना करता है, उसमें रुचि रखता है उसके प्रभाव से भोगभूमि में उत्पन्न होता है। ऋषभदेव जो अपने पूर्वभव में वज्रजंघ चक्रवर्ती थे उनकी धर्मपत्नि श्रीमती ने चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दान दिया था उस समय सामने ४ प्राणी व्याघ्र, शूकर (सुअर), वानर, नेवला (नकुल) जो आहारदान की अनुमोदना कर रहे थे उस अनुमोदना के प्रभाव से वे भोगभूमि व स्वर्ग को प्राप्त होते हुये क्रमशः महाराजा आदिनाथ के अनंतवीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर नाम के पुत्र हुये और वज्रजंघ ? चक्रवर्ती का जीव भगवान् आदिनाथ तथा श्रीमती का जीव उस आहारदान के प्रभाव से श्रेयांस राजा हुआ था। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव जब अनुमोदना के प्रभाव से भोगभूमि को प्राप्त है और वहाँ दीर्घ काल तक कल्पवृक्षों से प्राप्त सुखों को भोगता है फिर जो सम्यग्दृष्टि जीव है यदि वह साक्षात् दान देगा तो उसका कितना महत्व होगा उसे कहने में, मैं असमर्थ हूँ।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

> **दानाय यस्य न समुत्सहते मनीषा तद्योग्यसंपदि गृहाभिमुखे च पात्रे।**
> **प्राप्तं खनावति महार्घ्यतरं विहाय रत्नं करोति विमतिस्तलभूमिभेदम् ॥३४॥**

अर्थ - दान के योग्य सम्पत्ति के होने पर तथा पात्र के भी अपने गृह के समीप आ जाने पर जिस मनुष्य की बुद्धि दान के लिये उत्साह को प्राप्त नहीं होती है वह दुर्बुद्धि खान में प्राप्त हुए अतिशय मूल्यवान् रत्न को छोड़कर पृथिवी

Scanned with CamScanner

के तलभाग को व्यर्थ खोदता है।

बंधुओ ! आचार्य भगवन् कहते है कि जमीन को इसलिये खोदा था कि रत्नों की राशि मिले फिर भी नहीं लिया तो वह मूर्ख अज्ञानी माना जाता है कि सत्पात्र घर के सम्मुख आ गये है और दान देने के योग्य सम्पत्ति भी है समर्थ भी है तो भी दान नहीं दिया है तो उसने आती हुई लक्ष्मी को जलांजलि दी है सौभाग्य को दरवाजे से ही जाने दिया है। अर्थात् सत्पात्र के प्राप्त होने पर सेवा न कर सका।

आगे परमोपकारी गुरु कैसे-२ शब्दों का प्रयोग करके समझाने का पावन प्रयास करते है और प्रेरणा देते है इसके विषय में आचार्य महाराज पुनः कह रहे है -

नष्टा मणीरिव चिराज्जलधौ भवेऽस्मिन्नासाद्य चारुनरतार्थजिनेश्वराज्ञाः ।
दानं न यस्य स जडः प्रविशेत् समुद्रं सच्छिद्रनावमधिरुह्य गृहीतरत्नः ॥३५॥

अर्थ - चिरकाल से समुद्र में नष्ट हुए मणि के समान इस भव में उत्तम मनुष्य पर्याय, धन और जिनवाणी को पाकर जो दान नहीं करता वह मूर्ख रत्नों को ग्रहण करके छेदवाली नाव में चढ़कर समुद्र में प्रवेश करता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कहते है कि आपने उत्तम कुल को पाया और उसको पाकर दान नहीं दिया तो यह बहुत बड़ी मूर्खता है। क्योंकि जब महाराज आहार को निकलते है तो महाराज को आहार देने की बहुत लोगों की भावना होती है कि मैं महाराज को आहार दूँ लेकिन योग्यता चाहिए। एक बार भावनगर के चातुर्मास के पश्चात् विहार पालीताना के लिये हुआ लेकिन पालीताना के पास गाँव की समाज में झगड़ा हो गया। और झगडा इतना गहरा हुआ कि दोनों तरफ के १०-१२ लोग खत्म हो गये जिससे वहाँ लगभग ५००-६०० पुलिस के टेन्ट लगे थे हमारा मुकाम भी वही स्कूल में था वहाँ ही हम लोगों का प्रातःकाल का आहार होना था। पुलिस ने रात भर पहरा दिया, हम लोगों की चर्या को देखा। प्रातः होने पर वे हमारे पास आये और चर्चा निकली तो मैंने कहा-मुनि बहुत उच्च विचार वाले होते है, सभी को समान दृष्टि से देखते है, वे सभी का कल्याण चाहते है, उनके मन में भेदभाव नहीं आता। इस प्रकार चर्चा चलते-२ उन्होंने कहा-क्या हम लोग आहार दे सकते ? मैं सोचने लगा और कहा-आहार सभी दे सकते है लेकिन शुद्धि में लेते और शुद्ध लेते है और उन्हें सामग्री के विषय में बताया। सभी पुलिस वाले सब कुछ करने के लिये तैयार हो गये कि हम लोग भी चौका लगा सकते है आप हमें आदेश दीजिये। मैंने कहा-त्याग करना पड़ेगा आलू-प्याज का। पहले वे हिचकिचाये लेकिन फिर वे तैयार हो गये। फिर मैंने कहा-चमड़े का त्याग करना पड़ेगा। उन्होंने कहा-उसको तो पहनना पड़ता है मैंने कहा-तब तो संभव नहीं हो सकेगा। तब उन्हाने कहा-अच्छा देख तो सकते है। मैंने कहा-हाँ, देख सकते है। इसी प्रकार एक ठाकुर सहाब भी हम लोगों से बहुत प्रभावित हुये और परिवार के साथ सोला पहन कर आये कि मैं आहार दूँगा। बाद में उन्हें समझाया तो उन्होंने कहा-आप जो नियम दोंगे वो मैं ले लूगाँ लेकिन आप आहार ले लीजिये। एक बार एक ब्राह्मण का लड़का आहार देने आ गया मेरा मन नहीं हुआ और मैंने इशारे से कहा और रोका तो उसने कहा-मैं ब्राह्मण हूँ इसलिये आप मुझसे आहार नहीं ले रहे है। बाद में उसे समझाया कि तुम्हें देव दर्शन आदि नियम पालना पड़ेगा। कहने का तात्पर्य है कि एक बार जैन पीछे रह जाये लेकिन ऐसे लोगों को देखों जिनकी भावना होती आहार देने की।

Scanned with CamScanner

इसी प्रकार राजकोट (गुज.) से विहार हो रहा था एक गाँव में एक भी जैन समाज का घर नहीं था वहाँ की जैनेतर समाज ने संघ अगवानी की थी वहाँ एक दूधवाला रहता था वह रास्ते में रात्रि के समय दूध, ग्लास एवं शक्कर लेकर आया बोला-बाबा दूध पी लीजिये, मैं सभी की व्यवस्था से लाया हूँ मेरी आपसे प्रार्थना है। सभी श्रावकों ने समझाया कि महाराज सामायिक कर रहे है वे बोलेंगे नहीं तथा वे दिन में एक ही बार आहार-पानी जो भी लेना होता है ले लेते है, रात्रि में कुछ भी नहीं लेते। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ा रहा कि कुछ भी हो मैं महाराज को दूध देकर ही जाऊँगा।और वह मेरी पूरी सामायिक होने तक बैठा रहा। अंत में मैंने सामायिक के बाद उसे समझाया कि हमारे यहाँ श्रावक भी रात्रि में नहीं खाता तो फिर हम लोग तो साधु है तब वह मुश्किल से माना और उसने प्रसाद के रुप में लोगों में वितरण कर दिया। तथा उससे कहा-कि दिन में भी जो लेते है वह शुद्ध तरीके से तैयार किया हुआ ही लेते है। दूसरे दिन वह नहा-धोकर शुद्ध वस्त्र पहन कर, शुद्ध पानी से बर्तन वगैरह शुद्ध करके शुद्ध दूध तैयार करके आहार के समय ले आया।

बंधुओ ! वह जैन नहीं था लेकिन उसकी भावना बहुत पवित्र व ऊँची थी। जबकि आज हम जैन होकर भी दान नहीं करते तो विस्मय होता है कि जो मनुष्य कुल, धन व जिनवाणी को सुन-समझ कर भी दान नहीं करता वह महामूर्ख है। अर्थात् वह संसार समुद्र में डूबने की तैयारी कर रहा है इसलिये भव्यों को चाहिये कि जो तू द्रव्य को घूमने में बर्बाद कर रहा है उस द्रव्य का सदुपयोग सत्पात्रों को दान, तीर्थोद्धार, पूजा-अर्चना, दीन-दुखियों की सहायतामें करें, रोगी को औषधी कराये, पढ़ने के लिये समर्थ नहीं तो उसके पढ़ने में सहयोगी बनें, पाठशाला, पंचकल्याणक, दान आदि में करें। और सम्पदा का प्रयोग भी समय पर होना चाहिये। यदि आपने भूखे-प्यासे, दीन-दुखीयों पर ध्यान नहीं दिया और आप दान देते रहे तो आपके दान देने से कोई फायदा नहीं। यदि आपने कोई अनाथ है उसे सहयोग किया, असहाय की सहायता की तो वह भविष्य में आपका उपकार स्मरण करेगा, कृतज्ञता मानेगा। क्योंकि यदि आपने थोड़ा सा भी उपकार किया और ऐसे अवसर पर किया तो वह उपकार बहुत बड़े रुप में फलीभूत होगा। कहा भी जाता है।

तू एक पैसा देगा वह एक लाख देगा

यदि आपने एक पैसा सही स्थान पर दिया है तो वह लाखों के रुप में फलीभूत होता है। इस प्रकार पूज्य आचार्य महाराज दान के लिये प्रेरणा दे रहे है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कह रहे है-

यस्यास्ति नो धनवतः किल पात्रदानमस्मिन् परत्र च भवे यशसे सुखाय।
अन्येन केनचिदनूनसुपुण्यभाजा क्षिप्तः स सेवकनरो धनरक्षणाय ॥३६॥

अर्थ – जो पात्र दान इस भव में यश का कारण तथा परभव में सुख का कारण है उसे जो धनवान् मनुष्य नहीं करता है वह मनुष्य मानों किसी दूसरे अतिशय पुण्यशाली मनुष्य के द्वारा धन की रक्षा के लिये सेवक के रुप में ही रखा गया है।

बन्धुओ ! आचार्य महाराज समझा रहे है कि जो हर्ष पूर्वक दान देता है वह इस भव में और परभव में सुखी

Scanned with CamScanner

होता है। दशलक्षण पूजा में कहा भी है

दान देय मन हरष विशेखे, यह भव जस पर भव सुख देखे ॥

दान देने से संसार में प्रसिद्धि होती है और परलोक में सुख होता है और जो ऐसा दान सम्यक् प्रकार से नहीं देता है तो समझना चाहिये कि वह किसी के यहाँ सुरक्षा के लिये रखे गये धन की रखवाली करता है। फिर आपका धन का संचय करना सार्थक नही है, उस धन से सही फल प्राप्त नहीं होता। जो धन को जोड़-२ कर रखता है खर्च नहीं करता उसके धन का नाश होता है क्योंकि धन की तीन गति है-दान, भोग, नाश। अर्थात् धन मिला है तो दिल खोल कर दान करो, दान नहीं करते तो उसका जीवन में उपयोग करो और यदि वह भी नहीं होता तो नियम से उसके धन का नाश होता है। इसलिये हम सभी को सदैव अच्छे कार्यों में धन का सदुपयोग करते रहना चाहिये। तो हमारा कल्याण होगा।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक २०-११-०९
स्थान-तलोद (गुज.)
दिन-शुक्रवार

Scanned with CamScanner

प्रव. १०/ श्लोक ३७

अपना-पराया धन

- समझदार वह व्यक्ति है जो अपना धन दान के कार्यों में प्रयोग करता है तो उसका धन निरन्तर विकसित होता है और वह इस लोक में ही क्या पर लोक में भी काम आता है।
- कुछ लोग मिट्टी हाथ में उठाते है तो वह सोना बन जाती है और कुछ लोग सोना उठाते है तो वह मिट्‌टी बन जाती है। कारण कि जिसने पहले धन का सदुपयोग किया है आज वह उसके लिए कदम-२ पर उपलब्धि प्रदान कर रहा है और जिन्होंने सदुपयोग नहीं किया है उनके लिये उपलब्धियाँ भी अनुपलब्धि की तरह है।

बंधुओ ! स्वाध्याय की परम्परा हमारी एक नैतिक परम्परा चल रही है। जिसमें पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज 'पद्मनंदि पंचविंशतिः' ग्रंथ के दूसरे अधिकार दानोपदेश में दान की विशद् और बहुत सुंदर व्याख्या कर रहे है वे कहते है

चैत्यालये च जिनसूरिबुधार्चने च दाने च संयतजनस्य सुदुःखिते च ।
यच्चात्मनि स्वमुपयोगि तदेव नूनमात्मीयमन्यदिह कस्यचिदन्यपुंसः ॥३७॥

अर्थ - लोक में जो धन जिनालय के निर्माण कराने में, जिनदेव, आचार्य और पण्डित अर्थात् उपाध्याय की पूजा में, संयमी जनों को दान करने में, अतिशय दुखी प्राणियों को भी दया पूर्वक दान करने में, तथा अपने उपभोग में भी काम आता हैं, उसे ही निश्चय से अपना धन समझना चाहिये। इसके विपरीत जो धन इन उपर्युक्त कामों में खर्च नहीं किया जाता है उसे किसी दूसरे ही मनुष्य का धन समझना चाहिए।

बंधुओ ! आचार्य भगवन् कह रहे है कि धन क्या है ? धन किसका है ? जिसे हम धन कहते है क्या वही धन है ? तो नहीं, ये हमारा भ्रम है कि जिसे आज तक हमने धन कहा वह धन नहीं है अर्थात् जो हमारी तिजोरी में रखा है, जेब में रखा है, घर में रखा है, खाने-पीने और घर-परिवार के चलाने में जो धन व्यय हो रहा है वह भी धन नहीं है। फिर धन क्या है ? तो आचार्य भगवन् कहते है कि जो धन चैत्यालय के निर्माण, मंदिरों के जीर्णोद्धार में सदुपयोग किया गया है वह धन है। और जिनेन्द्र भगवान की मूर्तियों के निर्माण में, पूजा, अर्चना में, आचार्य और आचार्य संघ की सेवा में जिस धन का सदुपयोग किया जाता है वह भी धन है। इसी प्रकार उपाध्याय की पूजा तथा विद्वत जन के सम्मान में जो उपयोग किया जाता है वह भी धन है। चूंकि विद्वान, समाज में प्रकाश प्रदान करते रहते है यदि उनका ध्यान नहीं रखेगे तो समाज में वह दीप नहीं जल पायेंगे और धीरे-२ अंधकार ही अंधकार छा जायेगा। कहा जाता है वह समाज सदैव प्रकाशमान हुआ करती है जिसमें विद्वान हुआ करते है। तथा उस समाज का यशोगान गाया जाता तथा उसका उन्नति और उत्थान होता है। क्योंकि संत बहती हुई नदी की तरह अस्थिर होते है जबकि विद्वान एक जगह स्थिर रहकर समाज को व्यवस्थित तरीके से शिक्षा प्रदान कर सकते है, सही दिशा निर्देशन

Scanned with CamScanner

दे सकते है।

इसलिये उनके प्रति दिया गया धन, धन है। क्योंकि उससे धर्म की वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार पूजा-विधान आदि में उपयोग किया गया धन भी धन है। एक बार किसी व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा-सिद्धचक्र जैसे बड़े-२ विधान है उसमें पूजा तो वैसी ही है जैसी छोटी पूजा में है फिर पूजा तो पूजा है चाहे छोटी करो या बड़ी करो ? मैंने कहा-यह बिल्कुल सत्य है कि पूजा तो पूजा है चाहे छोटी की जाये या बड़ी। बोले-फिर इतना आडम्बर क्यों ? मैंने कहा-यह आडम्बर नहीं है यह तो पूजा के निमित्त से हमारी समर्पित और अर्पित की गई भक्ति है उसका प्रतीक है। अर्थात् हम जिस सामग्री के द्वारा अर्चना करते है यह हमारी उत्पन्न भावना का प्रतीक है। इसलिये गरीब के लिये एक मुट्ठी भर चावल चढ़ाना बहुत बड़ा दान है लेकिन जो सम्पन्न है उनको अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री चढ़ाना चाहिए।

बंधुओ ! भरत चक्रवर्ती जब जिनेन्द्र भगवान की अर्चना करते थे तो रत्नों की थाली भर-२ कर द्रव्य चढ़ाते थे फिर भी कहते थे मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ। इस प्रकार पूजा और अर्चना में समर्पित की गई सामग्री इस बात का प्रतीक है कि भगवान के चरणों में, एक त्याग की मूर्ति के सम्मुख हम क्या त्याग कर सकते है ? आज हम सभी व्रत-नियम-संयम से घबराते है तो यह एक तरीका निकाल लिया गया कि ठीक है आप कुछ भी त्याग नहीं कर सकते हो तो मुट्ठी भर चावल तो जरुर त्याग कर सकते हो। इसलिये भक्त जब भगवान के सम्मुख दर्शन करता है तो खाली हाथ से नहीं करता है। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान की पूजा और अर्चना त्याग का प्रतीक होती है। निर्ग्रंथ संत परिग्रह के त्यागी होने के कारण भाव सहित पूजा किया करते है और श्रावक परिग्रह के त्यागी न होने के कारण अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य से भावपूर्वक पूजा किया करते है।

एक बार एक व्यक्ति ने आकर पूछा-महाराज, पूजा में चढ़ाई गई इतनी सारी एवं कीमती सामग्री का क्या होगा ? मैंने कहा-भक्त इस बात की अपेक्षा नहीं रखता है कि इसका क्या होगा ? उसने तो चढ़ा दिया और छोड़ दिया, अब तो वह उसके लिये निर्माल्य की तरह है। फिर जो भगवान की सेवा करने वाला है वह सम्भालेगा। क्योंकि जिस वस्तु को छोड़ दिया है उसे फिर मुड़ करके नहीं देखना चाहिये, यही उत्तम त्याग कहलाता है।

पूज्य आचार्य महाराज ने अगला विशेषण दिया है संयमी जनों को दान करने में जो धन का सदुपयोग किया जाता है वह धन भी धन है। संयमी दो प्रकार के होते है एक सकल संयमी मुनि, दूसरे देशव्रती संयमी श्रावक। एक बार भरत चक्रवर्ती अपनी राज्य सभा में विचार कर रहे थे कि मेरे पास अपूर्व सम्पदा है मैं इसका सदुपयोग कैसे करूँ ? मुनियों को तो बहुत से बहुत आहार दान, शास्त्र दान और पिच्छि-कमण्डलु दे सकते है इसके अलावा वे कुछ भी नहीं लेते है। फिर वह दूसरा तरीका सोचता है कि जो देशव्रती श्रावक आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी भैय्या, बहिनें है उनके लिये वस्त्र दान दिया जा सकता है उसे वे स्वीकार भी कर सकते है। लेकिन उसके आगे कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे। अब मैं और दान कैसे करूँ ? तब भरत चक्रवर्ती अपने राज्य में इस बात की खोज करता है कि अब मैं दान किसके लिए दूँ ? और सत्पात्रों की खोज करने के लिए भरत अपने राज्य प्रांगण में कीचड़ तैयार करके उसमें कुछ बीजों को अंकुरित करवाता है। और नगर के सभी लोगों को महल

Scanned with CamScanner

में आमंत्रित करता है। उसमें बहुत से लोग तो अंकुरण को कुचलते हुये राजभवन में आ जाते है और बहुत कुछ श्रावक सीमा पर ही खड़े रहते है। चक्रवर्ती पूछता है कि क्या सभी श्रावक राजभवन में आ चुके है ? तब राजमंत्री कहता है-महाराज कुछ लोग तो आ गये है लेकिन बहुत कुछ सीमा के पास ही खड़े है। भरत पूछता है-ऐसा क्यों ? तब राजमंत्री कहता है -महाराज, वे बड़े धार्मिक है, दयालु प्रकृति के है, अहिंसा उनका प्रधान व्रत है, वे हरी घास को जीव मानते है और उसमें पैर रखने से हिंसा मानते है। कीचड़ में कच्चा, अनछना पानी होता है और एक बूँद अनछने पानी में विज्ञान की अपेक्षा ३६४५० या ३९००० जीव तथा जैन शास्त्र के अनुसार असंख्यात जीव होते है। इसलिये वे उसमें पैर रखने के लिए तैयार नहीं है। भरत चक्रवर्ती उनके गुणों को सुनकर प्रसन्न हो गये है कि जिसकी मुझे खोज थी वो मिल गये। इस प्रकार जो लोग राजभवन में आ चुके थे उन्हें दूसरे रास्ते से बाहर कर दिया गया और जो सीमा के पास खड़े थे उन्हें दूसरे रास्तें से ससम्मान राजभवन में लाया गया और उनको भरत चक्रवर्ती सम्मान के साथ दान देता है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि तथा देशव्रती के लिये यथाशक्ति एवं यथायोग्य सहयोग व सहायता की जाती है। और इस प्रकार के कार्यों में दिया धन, धन है।

बंधुओ ! अगला विशेषण दिया है दुखी जनों के दुखों को दूर करने के लिए अर्थात् जो बीमार है, विधवा है, असहाय है, परित्यक्ता है (जिसके पति ने छोड़ दिया है) या जिस (माता-पिता बच्चे के) छोटी उम्र में ही खत्म हो गये है, या जिनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं है या जो व्यक्ति अपने परिवार का पालन करने में सक्षम नहीं है इत्यादि प्रकार से जो दुखी है उनके दुख दूर करने में जो धन का सदुपयोग किया जाता है वह धन, धन कहलाता है।

बंधुओ ! एक समय था जब हमारे समाज में ऐसे उदार व्यक्ति थे जो दान भी देते थे और अपनी समाज के गरीब लोगों को छिप-२ कर सहयोग करते थे। विधि भी यही है कि दान छपा कर नहीं छिपा कर दिया जाता है। लेकिन आज का दान छपाकर और प्रदर्शन के साथ दिया जाता है। आज हम किसी गरीब का सहयोग करते है तो पहले सारी समाज के सामने उसकी पूरी इज्जत धो देते है फिर उसका सम्मान करते है। सोचिए, आज जिसके दिन आर्थिक कमजोरियों के कारण खराब आ चुके है और परिवार के संचालन की व्यवस्था ही नहीं रही है जबकि पहले वे बहुत अच्छे सम्पन्न सेठ थे लेकिन दिन बदलते देर नहीं लगती। आज वे व्यक्ति वैसे ही इस बात को सोच-२ कर के दुखी है कि मैं पहले क्या था और आज क्या हो गया। और दूसरा दुख है कि परिवार का संचालन नहीं कर पा रहा हूँ। उस पर भी तुमने उसको सारी समाज के सामने खड़ा करके सहयोग किया है फिर उसके दुख की सीमा नहीं रहती है। और समाज के कुछ लोग कह भी देते है कि तुम सारी समाज के सामने खड़े होकर अपनी प्रार्थना करना लेकिन हर व्यक्ति इसके लिये तैयार नहीं हो पाता है विरला ही कोई व्यक्ति होता है जिसकी परिस्थिति अत्यन्त गंभीर होती है लेकिन उसके अंदर में असहनीय पीड़ा के आँसू भरे रहते है, उसे कष्ट भी होता है लेकिन उसका परिवार है उसे चलाना है तो उसको सबकुछ करने के लिए तैयार होना पड़ता है। तथा कितने लोग ऐसे भी होते है जो इसके लिए तैयार नहीं हो पाते है और भूखे-प्यासे एवं बीमार रह कर जिंदगी पूरी कर देते है लेकिन किसी से कुछ माँगते नहीं है।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि जो जघन्य पात्र है उसे भी दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमारी समाज में उदार व्यक्ति होना चाहिए जो कभी उन परिवारों को भी देखे जिनके पास खाने को कुछ नहीं है और सम्मान के साथ उनको भोजन कराये। प्राचीन समय में ऐसे ही लोगों को भोजन कराने की सबसे श्रेष्ठ परम्परा मानी जाती थी लेकिन आज हम आमंत्रण करते है तो उन लोगों को बुलाते है जिनके घर में प्रायः खाने की कोई कमी नहीं है और उन लोगों पर ध्यान नहीं देते है जिनके यहाँ कोई कमी है। इसी प्रकार सम्मान भी उन लोगों का करते है जिसके पास सब कुछ है लेकिन उनका ध्यान नहीं रखते जिनके पास अपने परिवार को चलाने की सामर्थ्य भी नहीं है। और वे दूसरों के यहाँ छोटे-२ काम करते है तो ऐसे लोगों के लिए अथवा कोई भी दीन-हीन जैन ही क्या जैनेत्तर भी हो तो भी उनके कष्ट दूर करना चाहिये। हमारे शास्त्रों में पशु-पक्षियों के विषय में भी कहा है कि उनके कष्टों को दूर करने में, उनके उद्धार और उपकार में, उनकी रक्षा करने में दयार्द्र होकर जो धन का सदुपयोग किया जाता है वही वास्तव में धन है। इसी श्रृंखला में पूज्य आचार्य महाराज ने अंतिम विशेषण दिया कि अपने उपभोग में भी जो द्रव्य / धन काम में आता है वह भी धन है। इस प्रकार इन सभी कार्यों में खर्च किया गया धन ही निश्चय से धन मानना चाहिए किंतु इसके विपरीत कार्यों में जो खर्च किया जाता है वह वास्तविकता में धन नहीं है।

हमारे पूज्य आचार्य महाराज ने बताया था कि एक बार एक पिता ने अपने चार बेटों के लिए ४-४ अनाज के दाने दिये और कहा कि बेटा इनको सुरक्षित रखना, समय आने पर हम इनको लेगें। पहला बेटा जो धनाढ्य था उसने सोचा कि हमारे पिताजी द्वारा दी गई यह सामग्री है इसके लिए सुरक्षित रखना चाहिए और उसने सोने की डिब्बी में रखकर उसे तिजौरी में रख लिया। दूसरे बेटे तथा तीसरे बेटे ने भी पिताजी की आज्ञा को स्वीकार कर उसे सुरक्षित रख लिया। चौथा बेटा विचारशील था उसने सोचा सुरक्षित रखने से कभी बीज सुरक्षित नहीं होगे और उसने सुयोग्य स्थान पर बीज को बो दिया। धीरे-२ उसकी फसल आई। फसल आने के बाद भी पिताजी ने बीज नहीं माँगा तो फिर उसने बीज को बो दिया और इस प्रकार ३-४ बार उस बीज से फसल को प्राप्त किया। तब एक दिन उसके पिताजी ने चारों बेटों को बुलाया और कहा कि- बेटा हमने कभी आप लोगों के लिए चार दाने दिये थे वे चार दाने लाइये। पहला बेटा जिसने दानों को तिजोरी में संभाल कर रखा था उसने चार दाने पिताजी को लाकर दे दिये। दूसरा तथा तीसरा बेटा जिसने भी दानों को सुरक्षित रखा था जब खोल कर देखा तो दानों में कीड़े लग गये थे और वे खत्म हो गये थे। अब चौथा बेटा बोला-पिताजी आपने जो दाने दिये थे वे अब ४ नहीं रहे बल्कि इतने अधिक हो गये कि उसको लाना कठिन है कैसे लाये ? उसको लाने के लिए आपको ट्रक देना पड़ेगा तब मैं उन दानों को ला पाऊँगा। अच्छा है आप ही वहाँ चले और उन दानों को देख ले। अन्य बेटों ने एवं पिताजी ने पूछा-वे चार दाने ऐसे कैसे हो गये ? तब छोटे बेटे ने सारी कहानी सुना दी। पिताजी उसकी बात सुनकर प्रसन्न हो गये और उसे सारी सम्पदा प्रदान कर दी। कहने का तात्पर्य यह है कि **समझदार वह व्यक्ति है जो अपना धन दान के कार्यों में प्रयोग करता है तो उसका धन निरन्तर विकसित होता है और वह इस लोक में ही क्या पर लोक में भी काम आता है।**

बंधुओ ! कभी-२ देखा जाता है कि **कुछ लोग मिट्टी हाथ में उठाते है तो वह सोना बन जाती है और कुछ**

Scanned with CamScanner

लोग सोना उठाते है तो वह मिट्टी बन जाती है। कारण कि जिसने पहले धन का सदुपयोग किया है आज वह उसके लिए कदम-२ पर उपलब्धि प्रदान कर रहा है और जिन्होंने सदुपयोग नहीं किया है उनके लिये उपलब्धियाँ भी अनुपलब्धि की तरह है। इसलिये हमें अपने जीवन में सर्वश्रेष्ठ मार्ग का चयन करना चाहिये यानि सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर मोक्षमार्गी बनना चाहिये यही सबसे बड़ा त्याग है। लेकिन आप इतना नहीं कर सकते है तो धन का सदुपयोग समय-२ पर करते रहना चाहिये क्योंकि जो इस प्रकार का सदुपयोग करता है उसका ही धन सफल और सार्थक माना जाता है।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान - तलोद (गुज.)

दिनांक - २१-११-०९

वार - शनिवार

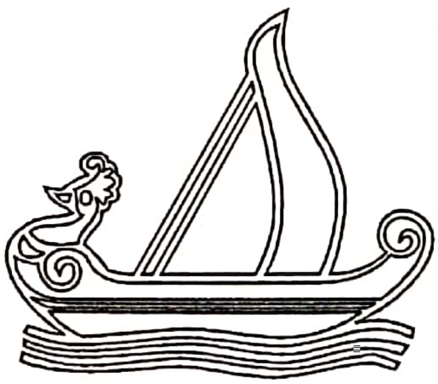

प्रव.११/श्लोक - ३८

आहार दान की प्रेरणा

- लक्ष्मी संग्रह से नहीं अपितु त्याग से व्यक्ति के साथ चलती है। इसलिये कहा जाता है लक्ष्मी / संपदा एक छाया है। तुम यदि लक्ष्मी की ओर मुख करके दौड़ोगे तो उसे कभी नही पकड़ पाओगे और लक्ष्मी की ओर पीठ करके दौड़ोगे तो लक्ष्मी तुम्हारा कभी पीछा नहीं छोड़ेगी।
- जब तक तुम्हारा पुण्य है और उस पुण्य से जो लक्ष्मी मिली है उस लक्ष्मी का सदुपयोग सत्पात्रों को दान देने में करना चाहिये। जैसे कुएँ से कितना भी पानी निकाला जाए कुआँ कभी खाली नहीं होता। बल्कि बढ़ता ही रहता है।

बंधुओ ! परम पूज्य आचार्य श्री पद्मनंदि महाराज ने पूर्व गाथा में कहा था कि उस श्रावक का धन, धन नहीं है जो धन, धर्म के काम न आये। अर्थात् धन वह है जो धर्म के काम आता है तथा उस धन को ही धन की संज्ञा दी गई है। आगे पुनः इसी बात को लिखते है-

पुण्यक्षयात्क्षयमुपैति न दीयमाना लक्ष्मीरतः कुरुत संततपात्रदानम्।
कूपे न पश्यत जलं गृहिणः समन्तादाकृष्यमाणमपि वर्धत एव नित्यम् ॥३८॥

अर्थ - सम्पत्ति पुण्य के क्षय से क्षय को प्राप्त होती है न कि दान करने से। अतएव हे श्रावकों ! आप निरन्तर पात्र दान करें। क्या आप यह नहीं देखते है कि कुएँ से सब ओर से निकाला जाने वाला भी जल नित्य बढ़ता ही रहता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य भगवन् यहाँ उन लोगों के प्रश्न का समाधान करते हुये कह रहे है जो दान देते समय यह बात करते है कि दान देने से लक्ष्मी कम होती है इसलिये हम दान देने से पीछे रह जाते है। तो लक्ष्मी दान देने से कम नहीं होती है अपितु पुण्य के क्षय होने से लक्ष्मी कम होती है। यदि आपका पुण्य क्षीण हो गया है तो लक्ष्मी समाप्त हो जाती है और यदि आपका भाग्य / पुण्य अच्छा है तो आप सब कुछ भी दान क्यों न दे दोंगे तो भी लक्ष्मी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। तीर्थंकर महावीर को राजकुमार की अवस्था में ही वैराग्य हो गया और निर्ग्रंथ दीक्षा धारण करने का दृढ़ संकल्प ले वन की ओर प्रस्थान करने लगे तभी लक्ष्मी देवी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो प्रार्थना करने लगी हे भगवन् ! आप मुझे छोड़ कर जा रहे है यह मेरे लिए बहुत बड़े दुर्भाग की बात है। इससे मुझे बहुत कष्ट / पीड़ा / तकलीफ होगी। कृपया आप मुझे मत छोड़िये। राजकुमार वर्द्धमान, लक्ष्मी से कहते है हे लक्ष्मी ! मैं तुम्हें नहीं किन्तु ऐसी अंतरंग लक्ष्मी / मोक्ष लक्ष्मी को वरण करने जा रहा हूँ कि जिसके पाने के बाद तुम भी कभी मुझे छोड़ नहीं सकोगी। क्योंकि बाहर की लक्ष्मी पुण्य पर निर्भर करती है अर्थात् जब तक पुण्य है तब तक उसके साथ रहती है और पुण्य के क्षीण होते ही वह अपने कदम आगे बढ़ा लेती हैं।

Scanned with CamScanner

बंधुओ ! किस क्षण में व्यक्ति के जीवन के पुण्य के पन्ने पलट जाये इस विषय में हम कुछ सोच भी नहीं सकते। जिसे सन्ध्याकाल में बड़े ऐश-आराम के साथ जाते हुये देखा था और प्रातः काल उसे रोते हुए देखा गया। एक बार एक ऐसे परिवार को हम लोगों ने देखा जिसके यहाँ बहुत बड़ा थोक व्यापार होता था वह इतना अधिक व्यस्त रहता था कि उसे अपने व्यापार से भगवान के दर्शन करने की भी फुर्सत नहीं मिलती थी। एक दिन रात्रि के समय उस व्यक्ति की दुकान में आग लग गई और प्रातः होने तक सब कुछ खाक हो गया। सुबह समाज के लोगों के साथ मेरे पास आँखों में आँसू भरे हुये आया। लोगों ने कहा-महाराज इसको सांत्वना दे दीजिये। मैंने कहा-क्या हुआ ? बोले-महाराज कुछ नहीं आप आशीर्वाद दे दीजिए। बाद में पता चला कि उनकी दुकान जल कर राख हो गई। कुछ भी नहीं बचा। जैसे तैसे थोड़ा कुछ बचा भी था तो उसे बुझाने वाले ही बुझाने के नाम पर ले गये। प्रातः काल ही नहीं हो पाया कि कुछ कर्जदारों ने घर पर ताला डाल दिया कि अब इसके पास तो कुछ रहा नहीं यह मकान मात्र है और यह मकान भी कही दूसरा कर्जदार न आकर ले ले। कुछ कर्जदार सहानुभूति के लिए कम इस बात को स्मरण कराते हुए आये कि सेठ जी जो भी हमारा लेन-देन है उसे जैसा भी है पूरा कर दीजिये। लोगों ने कहा-महाराज, सेठजी को अपने पास बैठा लीजिये वह बहुत परेशान हो गये है। पश्चात् ९ दिन के बाद समाज की एक मीटिंग हुई और दूसरे दिन प्रवचन के बाद उनके लिए सामूहिक समाज से चंदा किया गया ताकि यह पुनः कोई छोटा सा व्यापार प्रारंभ कर सके और अपने परिवार का संचालन कर सके। इस प्रकार जीवन के समयों को बदलते जरा भी देरी नहीं लगती। अर्थात् एक क्षण में क्या से क्या हो जाए कुछ पता नहीं। इसलिये लक्ष्मी सदैव खड़ी रहती है। तब लक्ष्मी कहती है -भगवन्, मैं आपके चरणों की दासी बनकर रहूँगी, मैं कभी भी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी। भगवान कहते है- मैंने अनंत भवों में देख लिया है तू हर बार पुण्य के साथ ही रही है किसी व्यक्ति विशेष के साथ नहीं रही है।

बंधुओ ! दीक्षा के पश्चात् महामुनि वर्द्धमान तीन दिन के बाद आहार को निकलते है और आहार के पश्चात् लक्ष्मी पुनः आकर खड़ी हो गई और बोली- हे भगवन्, आपने भले ही दीक्षा ले ली फिर भी मैं आपके साथ रहूँगी और वहाँ पर पंचाश्चर्य के अवसर पर रत्नवर्षा करती है। भगवान कहते है-मेरे आहार का भी त्याग और वे ध्यानस्थ हो गये। लक्ष्मी फिर सोच में पड़ जाती है कि मैं अब क्या करूँ ? और भगवान के ध्यान में बैठते ही केवलज्ञान हो गया लेकिन अब की बार लक्ष्मी अपनी पूरी शक्ति के साथ उनके चरणों में आ गई और समवशरण के रुप में बदल गई। तथा प्रसन्न होकर बोली-भगवन् ! मैंने कहा न मैं आपको नहीं छोडूँगी। भगवान ने कहा-क्यों ? उसने कहा-मैं धर्मात्मा के साथ / धर्म पुरुष के साथ रहती हूँ अर्थात् जहाँ धर्म होता है वहाँ मैं रहती हूँ और आप जैसे महापुरुष के पास धर्म है इसलिये मैं आपको नहीं छोडूँगी, मैं आपके चरणों में रहूँगी। तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी समवशरण में कमल से ४ अंगुल ऊपर बैठ जाते है। लक्ष्मी फिर उदास हो जाती है और अन्त में भगवान योग निरोध करके मोक्ष को / निर्वाण को प्राप्त कर लेते है।

बंधुओ ! लक्ष्मी संग्रह से नहीं अपितु त्याग से व्यक्ति के साथ चलती है । इसलिये कहा जाता है लक्ष्मी / संपदा एक छाया है । तुम यदि लक्ष्मी की ओर मुख करके दौड़ोगे तो उसे कभी नहीं पकड़ पाओगे और लक्ष्मी की ओर पीठ करके दौड़ोगे तो लक्ष्मी तुम्हारा कभी पीछा नहीं छोड़ेगी । और पीठ करने का अर्थ है लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिये धर्म कार्य में, तो वह लक्ष्मी कभी भी समाप्त नहीं होती है । इसलिये हे भव्य ! जब तक तुम्हारा पुण्य है और उस पुण्य से जो लक्ष्मी मिली है उस लक्ष्मी का सदुपयोग सत्पात्रों को दान देने में करना चाहिये । जैसे कुएँ से कितना भी पानी निकाला जाए कुआँ कभी खाली नहीं होता । बल्कि बढ़ता ही रहता है । इसलिए कहा है

अगर मंजूर है धन की रक्षा, तो धनवानों बनो दानी ।
कुएँ से न निकलोंगे, तो सड़ जायेगा सब पानी ॥

इसलिए हे भव्य ! कभी भी आहार दान देने से नहीं चूकना चाहिए । क्योंकि दान देने से कमी नहीं आती है बल्कि दान देने से जीवन पावन व पुनीत बनता है ।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान-तलोद (गुज.)
दिनांक - २२-११-०९
वार - रविवार

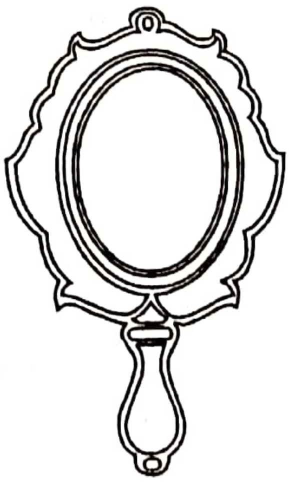

Scanned with CamScanner

प्रव.१२/श्लोक ३९-४२

परमार्थ में लोभ कैसा ?

◆ लोभ की एक ऐसी ही अवस्था होती है। लोभी व्यक्ति को परमार्थ नहीं दिखता है, न्याय नहीं दिखता है, नीति नहीं दिखती है और तो क्या भाई-भाई और पिता-पिता नजर नहीं आता, माँ-माँ और बहिन-बहिन नजर नहीं आती है। लोभ में आकर व्यक्ति उसको नष्ट करने के लिये तैयार हो जाता है।

बंधुओ ! परम पूज्य आचार्य भगवन् ने पूर्व गाथा में भेदाभेद के आराधक, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त, आत्म साधना में लीन रहने वाले, परम वैरागी, निर्ग्रंथ संत के प्रति दिये गये पात्र दान की महिमा को बतलाया है कि सत्पात्र के लिये दिया गया दान ही वास्तविकता में धन का सदुपयोग है और विषय कषाय, आरंभ-परिग्रह में किया गया दान संसार को बढ़ाने वाला है। इसी बात को आगे आचार्य महाराज कहते है।

सर्वान् गुणानिह परत्र च हन्ति लोभः सर्वस्य पूज्यजन पूजनहानिहेतुः ।
अन्यत्र तत्र विहितेऽपि हि दोषमात्रमेकत्र जन्मनि परं प्रथयन्ति लोकाः ।।३९।।

अर्थ – पूज्य जनों की पूजा में बाधा पहुँचाने वाला लोभ इहलोक में और परलोक में भी सबके सभी गुणों को नष्ट कर देता है। वह लोभ यदि गृह संबंधी किन्ही विवाहादि कार्यों में किया जाता है तो वह केवल एक जन्म में ही उसके दोष मात्र को प्रसिद्ध करते हैं।

बंधुओ ! लोभ किसे कहते है ? इस बात को बतलाते हुये आचार्य भगवन् कह रहे है कि जो पूज्य जनों या पंच परमेष्ठी की पूजा आदि में अपनी सम्पदा का प्रयोग नहीं करता है अर्थात् लोभ भावना रखता है तो उसका परिणाम भी उसे उसी प्रकार से मिलता है। एक बार एक व्यक्ति ने आकर एक दुकानदार से कहा कि- मुझे पूजन की बादाम चाहिये। दुकानदार मेरे कमरे में बैठा हुआ था उसके लड़के ने आकर कहा-पापा, पूजन की बादाम कहाँ रखी हुई है बता दीजिये ? मैं उसकी बात सुन रहा था तो मैंने पूछा-भाई अभी तक मैंने हर प्रकार की सामग्री के अलग-२ नाम सुने थे लेकिन क्या पूजा की बादाम भी अलग से आती है ? वे हँस पड़े और बोले-यह पूछने की बात नहीं है और मैं आपको बताने की उपयोगिता भी नहीं समझता हूँ लेकिन आज कल पूजन का सभी सामान आने लगा है। मैंने कहा-फिर तो पूजन की बहुत अच्छी क्वालिटी आने लगी होगी। बोले-नहीं, पूजन की सामग्री का अर्थ है जो सामग्री किसी काम में न आये। अर्थात् बादाम हो तो जो सबसे छोटी हो, वजन में हल्की हो। ऐसी सामग्री का प्रयोग पूजन में किया जाता है। लेकिन ध्यान रखना यदि आप हल्का सामान चढ़ाओंगे तो तुम्हें भी हल्का सामान मिलेगा। इसलिये हम लोभ करें तो संसार के कार्यों में करें लेकिन भगवान की पूजा-अर्चना में कभी लोभ न करें। यदि आपके पास एक बादाम चढ़ाने की सामर्थ्य है तो आप एक ही बादाम चढ़ाईये लेकिन अच्छी चढ़ाईये। इसलिए पूजन की द्रव्य को उत्तम श्रेष्ठ द्रव्य कहा गया है। लेकिन जो लोभ के कारण इस प्रकार के पूजन आदि कार्यों में हानि करता है वह लोभ उस प्राणी के सम्पूर्ण गुणों को नष्ट कर देता है। इसलिये हमें पूजन तथा दान आदि अच्छे कार्यों में लोभ नहीं करना चाहिये।

Scanned with CamScanner

एक बार की बात थी एक गरीब परिवार ने ठंडी के मौसम में महाराज को आहार दान दिया और आहार दान में बाजरे की रोटी तथा बाजरे की खीर बना कर खिलाई। ठंडी का मौसम था गरम-२ खीर खाने से महाराज का स्वास्थ्य ठीक हो गया और वे अपनी साधना में निरत हो गये। लेकिन आहार दान के प्रभाव से उसके घर में रत्नों की वर्षा हो गई। अब उसकी झोपड़ी, झोपड़ी नहीं रही महल बन गया, अब वह साधारण व्यक्ति नहीं बहुत बड़ा नगर सेठ बन गया। हर जगह उसको आदर-सम्मान मिलने लगा। और वह अनेक प्रकार से दान धर्म भी करने लगा। उसके पड़ोस में एक सेठ रहता था जब उसने उस गरीब की झोपड़ी को महल में बदला देखा तो एक दिन सेठानी ने पूछा कि- तुम लोग तो कितने गरीब थे आज इतना सब कुछ कैसे हो गया ? उस महिला ने सेठानी के लिए सारी कहानी सुना दी। सेठानी उसकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हो गई और सोचने लगी हमारे सेठजी की तो सारी जिंदगी व्यतीत हो गई तो भी इतना धन नहीं कमा पाये। यह बहुत अच्छा तरीका है और उसने घर जाकर सेठजी को सारी विधि सिखा देती है। अब सेठानी जी ने चौका लगाया और सोचा वह तो गरीब थी उसके पास मात्र बाजरा था मेरे पास तो शाली धान्य है उसकी स्वादिष्ट खीर बनायेंगे और महाराज को उसका आहार करायेंगे उसने दूसरे दिन चौका लगा कर खीर तैयार कर ली। गर्मी का मौसम था मुनि महाराज का पड़गाहन कर उसने गरम-२ खीर मुनिराज को खिला दी। परिणाम यह निकला कि उसके घर में रत्नों के स्थान पर अंगारे बरसे। चूंकि सेठानी का ध्यान आहार देने में कम आँगन पर अधिक था। वह बार-२ आँगन की ओर देख रही थी कि अब कुछ बरसा क्या......... । जब उसने देखा कि ओहो, सारे आँगन में लाल-२ रत्न बरस गये है तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और मुनिराज को ऐसे ही छोड़ कर टोकना लेकर आँगन में आ गई और बिना सोचे विचारे ही जल्दी-२ उठाकर टोकने में भरने लगी किन्तु थोड़े ही समय में उसके हाथ-पैर जलने से वह चीख पड़ी। क्योंकि वह नहीं समझ रही थी कि ये अंगारे है वह तो उन्हें रत्न ही समझ रही थी। सेठजी समझदार और विद्वान थे वे यह सब दृश्य देख रहे थे। उन्होंने जब सेठानी की ऐसी हालत देखी तो पूछा-क्या हुआ ? सेठानी ने कहा-मेरे हाथ-पैर में फोले पड़ गये और उनमें बहुत जलन हो रही है। सेठजी ने कहा-सेठानी तू तो बोल रही थी रत्न बरसेंगे फिर तेरे तो हाथ-पैर जल गये। सेठानी ने कहा-पड़ोसन ने तो यही कहा था कि रत्न बरसेंगे लेकिन यहाँ तो अंगारे बरसे। सेठानी तुरंत पड़ोसन के घर पहुँची और बोली-तुमने झूठ बोला था। पड़ोसन ने कहा-मैंने झूठ नहीं, सच बोला था और उसका ही परिणाम है कि आज मेरे यहाँ यह सब ठाठ-बाठ है। सेठानी- तो फिर मेरे यहाँ क्यों नहीं हुआ ? तब सेठजी ने कहा-वह गरीब जरुर थी लेकिन उसकी भावना पावन और पुनीत थी आपकी ऐसी पावन-पुनीत भावना नहीं थी। आपके अंदर लोभ था और लोभ की दृष्टि से ही तूने यह सब कुछ कार्य किया था इसलिये रत्न नहीं अंगारे ही अंगारे बरसे। इस प्रकार जो लोभ में आकर अपने धन का सही तरीके से सदुपयोग नहीं कर पाता है वह विभिन्न प्रकार के गुणों को प्राप्त नहीं कर पाता है। लेकिन वही लोभ जब गृह संबंधी विवाहादि कार्यो में किया जाता है तो इससे मात्र एक भव ही खराब होता है।

अर्थात् जिसने परमार्थ में लोभ किया है उसने जन्म-२ खराब किया है क्योंकि धर्म से अनेक जन्मों के कर्म दूर हो जाते है और एक ऐसा पुण्य संचय होता है जो अनेक जन्मों तक चलता है। और परमार्थ में लोभ करनेवाले को इसलोक में भी कुछ नहीं मिलता तथा परलोक में भी कुछ नहीं मिलता है। इसलिये परमार्थ में लोभ का त्याग करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

जातोऽप्यजात इव स श्रियमाश्रितोऽपि रङ्कः कलङ्करहितोऽप्यगृहीतनामा।
कम्बोरिवाश्रितमृतेरपि यस्य पुंसः समुच्चलर्ति नो जगति प्रकामम् ॥४०॥

अर्थ -मृत्यु को प्राप्त होने पर शंख के समान जिस पुरुष का नाम संसार में अतिशय प्रचलित नहीं होता वह मनुष्य जन्म लेकर भी अजन्मा के समान होता है अर्थात् उसका मनुष्य जन्म लेना ही व्यर्थ होता है। कारण कि वह लक्ष्मी को प्राप्त करके भी दरिद्र जैसा रहता है तथा दोषों से रहित होकर भी यशस्वी नहीं हो पाता।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि मृत्यु को प्राप्त होने पर शंख के समान जिस पुरुष का नाम संसार में अतिशय प्रचलित नहीं होता है अर्थात् उसकी संसार में प्रसिद्धि नहीं होती है वह जन्म लेने के बाद भी अजन्मा है। कारण कि वह धन को पाकर भी दरिद्र जैसा रहता है तथा दोषों से रहित होकर भी प्रशंसा व प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर पाता है। क्योंकि जिस घर में भगवान की पूजा-अर्चना तथा दान नहीं दिया जाता है उस घर में जन्म से ही अंधकार ही अंधकार होता है। वहाँ बाहर का दीपक जलाने के उपरांत भी धर्मरुपी प्रकाश नहीं हो पाता है। और जिसके घर में निरन्तर दान-पूजा हुआ करती है उस व्यक्ति का घर सदैव प्रकाशमान रहता है। उसके घर में सदैव आनंद और शांति की वर्षा हुआ करती है। हर जगह और हर समय उसकी प्रशंसा व प्रतिष्ठा हुआ करती है। सत्य यह है कि जिसके घर में संतों के चरण पड़ जाते है उसके घर में सहज मात्रा में धर्म के संस्कार रहते है कि कैसे हमको अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए ? कैसे अपने परिजनों के साथ रहना चाहिए ? आदि सहज मात्रा में व्यवहारिकता बनती है। तथा आहार दान के निमित्त से उसके घर में लोगों का आना-जाना होता है और लोग उसको अपने घर में बुला-बुलाकर आदर करते है।

शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि महामुनि ऋषभ देव की १३ महीने ७ दिन के पश्चात् अक्षय तृतीया के दिन जब आहार की विधि मिली और वे आहार करके जंगल की ओर चले गये तब समाचार सुनकर भरत चक्रवर्ती अयोध्या से चलकर हस्तिनापुर आया और राजा श्रेयांस व राजा सोमदेव का बड़ा आदर किया और उस समय उसकी भारी प्रशंसा की - कि हे राजा श्रेयांस ! चक्रवर्ती से भी अधिक पुण्यशाली आप है और आपके सम्मुख्र मेरा सारा वैभव फीका नजर आ रहा है। आज तो मुझे शर्मिन्दित होना पड़ रहा है कि मैंने इतना अच्छा पुण्य नहीं किया कि महामुनि ऋषभ देव की विधि मेरे यहाँ मिलती और उनका आहार मेरे घर में होता। धन्य है आप कि आपने ऐसे प्रशस्त पुण्य का अर्जन किया है। इस प्रकार जो सत्पात्रों को दान दिया करता है उसकी जगह-२ प्रशंसा होती है और यह सब दान की महिमा हुआ करती है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है

श्वापि क्षितेरपि विभुर्जठरं स्वकीयं कर्मोपनीतविधिना विदधाति पूर्णम्।
किंतु प्रशस्यनृभवार्थविवेकितानामेतत्फलं यदिह संततपात्रदानम् ॥४१॥

अर्थ -अपने कर्म के अनुसार कुत्ता भी अपने उदर को पूर्ण करता है। किन्तु प्रशंसनीय मनुष्य भव, धन एवं विवेक बुद्धि को प्राप्त करने का यहाँ यही प्रयोजन है कि निरन्तर पात्रदान दिया जावे।

बंधुओ ! संसार में एक कुत्ता होता है वह भी अपना पेट भर लेता है और आप भी अपना पेट भर लेते है तो दोनों ही अपने-२ कर्म के अनुसार पेट भर लेते है लेकिन दोनों के पेट भरने में उसका पेट भरना सार्थक है जो निरन्तर

Scanned with CamScanner

अपने इस अच्छे मनुष्य भव को पाकर पूजा-दान करता है। अर्थात् जो निरन्तर सत्पात्रों के लिए दान देता है ऐसे व्यक्ति का प्रशंसनीय मनुष्य भव, धन एवं बुद्धि प्राप्त करने का यही प्रयोजन है कि वह निरन्तर सत्पात्रों को दान देता रहे। लेकिन जिस समय में वह दान नहीं देता है उस समय उसका जीवन खाली उदर पूर्ति करने वाले कुत्ते के जीवन की तरह ही है।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है-

आयासकोटिभिरुपार्जितमङ्गजेभ्यो यज्जीवितादपि निजाद्दयितं जनानाम्।
वित्तस्य तस्य नियतं प्रविहाय दानमन्या विपत्तय इति प्रवदन्ति संतः ॥४२॥

अर्थ : करोड़ों परिश्रमों के द्वारा कमाया हुआ जो धन, पुत्रों और अपने जीवन से भी लोगों को अधिक प्रिय होता है निश्चय से उस धन के लिये दान को छोड़कर अन्य सब विपत्तियाँ ही है,ऐसा साधुजन कहते है।

बंधुओ! व्यक्ति करोड़ों परिश्रम करके धन कमाता है अर्थात् जब वह सिर से पैर तक पसीना बहाता है या खून पसीना एक करता है तब कही उसके घर में धन आता है। और उस धन के लिये लोभी व्यक्ति अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान् समझता है। शास्त्रों में एक कहानी आती है कि अमावस्या की घनघोर अर्द्ध रात्रि का समय था घनघोर बारिस हो रही थी बिजली चमक रही थी नदी में बाढ़ आई हुई थी उसी समय एक व्यक्ति नदी के किनारे आया और नदी में बहती हुई लकड़ियों को पकड़ने के लिये नदी में उतर गया और लकड़ियों को इकट्ठा करने लगा तभी तेज हवा के झोंके से एक बड़ा वृक्ष टूट कर नदी में गिर गया, जब उस व्यक्ति ने उस गिरते हुये वृक्ष को देखा तो अपने प्राणों की परवाह न करते हुये उस बहते हुये वृक्ष को पकड़ने के लिये नदी में कूद गया। उसी समय घनघोर बारिष के कारण राजा और रानी को नींद नहीं आने से वे राजमहल की छत पर टहल रहे थे और दूर-२ तक फैली अपनी राज्य की सीमाओं को देख रहे थे। तभी-अचानक राजमार्ग पर उनकी दृष्टि पड़ी तो देखा एक व्यक्ति एक विशाल वृक्ष नदी से निकाल कर ला रहा है। दोनों ने उसे देखा और देखने के बाद रानी ने राजा से शिकायत कि-महाराज अपने नगर में इतने भी गरीब लोग है जिन्हें ऐसी आँधी-तूफान में भी बाढ़ में बहती हुई लकड़ियों को एकत्रित करके और उन्हें बेच कर अपने परिवार का उदर पोषण करना पड़ रहा है। यदि आपके राज्य में इतनी गरीबी रही कि व्यक्ति अपनी आजीविका के लिए रात भर भी न सो पाए तो फिर धिक्कार है आपके राज्य के लिए। आपके बड़े-२ भण्डार है जिसमें अपार सम्पदा है और फिर भी आपके राज्य में ऐसी गरीबी है जिसे देखकर मुझे बहुत दुख हो रहा है। कृपया ऐसे लोगों की सहायता की जानी चाहिए। रानी ने जैसे ही यह बात कही राजा प्रसन्न हो गये कि महारानी आपने बहुत अच्छी बात कही और अब हम अपने राज्य में एक भी ऐसे गरीब नहीं रहने देंगे जो रात्रि में भी विश्राम न कर सकें। मैं उनके लिये सहयोग करूँगा। और प्रातः होते ही महाराज राजसभा में पहुँचे तो राजा ने गुप्तचरों के द्वारा उस व्यक्ति को बुला लिया जो रात्रि के समय उस वृक्ष को लेकर जा रहा था। और उससे पूछा-क्या तुम रात्रि में किसी वृक्ष को खींच कर ले जा रहे थे। उसने कहा - हाँ। राजा ने कहा-कि आप माँग लो जो माँगना चाहते हो मैं आपको मुख माँगा इनाम दूँगा। उसने कहा- हे राजन्! मुझे धन नहीं चाहिये। तब राजा ने पूछा-क्या चाहिये? उसने कहा-मेरे पास एक बैल है और मुझे उसकी जोड़ी का दूसरा बैल चाहिये। राजा ने तुरंत एक सैनिक को बुला कर कहा- जाओ, इसे अश्वशाला में ले जाकर घोड़ों को दिखा दो जो इसे पसंद आये उसे दे दो। सैनिक ने उसे पूरी अश्वशाला घुमा दी, लेकिन उसे एक भी बैल पसन्द नहीं आया, वह वापिस राजा के पास आया और

Scanned with CamScanner

बोला - हे राजन् ! मेरे पास जैसा बैल है वैसा आपकी अश्वशाला में नहीं है। राजा आश्चर्य चकित हो गया कि इसके पास कैसा बैल होगा तो पूछा-कि आपके पास कैसा बैल है ? उसने कहा-मैं उस बैल को इधर नहीं ला सकता हूँ। तब राजा ने कहा- चलो मैं आपके घर चलकर आपका बैल देखता हूँ कि आपका बैल कैसा है ? और कहा- राजा उस व्यक्ति के साथ उसकी कोठी में गया और वह राजा को एक कमरा, दो कमरा, तीन कमरा इस प्रकार अपनी सारी कोठी को पार कराकर अन्त में तलघर में ले गया और वहाँ जाकर देखा कि वहाँ पर अनेक प्रकार के जानवर हाथी, घोड़ा शेर, गाय, बैल और भी अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े सोने के बने हुये रखे हैं और उनमें रत्न जड़े हुये हैं। लेकिन वहाँ पर सोने का एक बैल है और वह दूसरे बैल की जोड़ी के लिये रात-दिन परिश्रम करता है। रूखी-सूखी रोटी खाकर परिवार का पालन पोषण करता है। और धन एकत्रित करता है। उसने कहा-राजन् ! बस इसी बैल की जोड़ी मुझे चाहिये। राजा उस व्यक्ति से कहता है कि- जितना धन आपके पास है उतना धन तो मेरे खजाने में भी नहीं है और तुम्हें देखकर ऐसा लगता है कि संसार में सबसे गरीब आप ही हैं।

साथ ही व्यक्ति इतना लोभी था कि कभी भी उसके घर में पूड़ी, मिठाई नहीं बनी। कभी भी फल, सब्जी नहीं खरीदे, सूखी रोटी और पानी पीकर सो जाते थे। कभी बच्चे घी की रोटी खाने को माँगते तो कहते बजार से घी खरीदना और वापिस कर देना जो बर्तन में लगा रहता उसी में कई दिन तक खाते रहते। दीपावली, रक्षांबधन कोई भी त्यौहार आता तो बच्चों को नाना के यहाँ भेज देते, पत्नी को पीहर भेज देते। एक बार दीपावली के दिन सारा परिवार नाना के यहाँ गया हुआ था। सेठजी अकेले थे वे प्रातः काल घूमते हुये अपने तलघर में पहुँच गये, ताला खोला और उसी में चाबी लगी छोड़कर अंदर चले गये, वहाँ तिजोरी खोलकर पैसों का हिसाब करने लगे। उसी समय कुछ बच्चे बाहर गेंद खेल रहे थे और उनकी गेंद तलघर के पास पहुँच गई, बच्चों ने देखा-ताला खुला हुआ है, तो उन्होंने सोचा सेठजी ताला लगाना भूल गये हैं। तो बच्चों ने ताला लगाया और चाबी उनके घर पर देने के लिये चले गये, वहाँ भी ताला लगा था, तो वह चाबी अपने घर पर रख ली। सेठजी ने बहुत दरवाजा खटखटाया पर किसी ने ताला नहीं खोला। सेठजी वहीं रोते-चिल्लाते रहे और अंत में दम घुट जाने से और भूख-प्यास के कारण उनकी मृत्यु हो गई। तीन दिन बाद जब परिवार के लोग आए, तो पड़ोस के बच्चों ने चाबी लाकर दी और कहा- तलघरे का ताला खुला हुआ था, तो हमने उसे बंद कर दिया ये चाबी है। सभी लोग तलघरे में गये ताला खोला तो देखा दरवाजे पर लाश पड़ी हुई है और बहुत बदबू आ रही है। कुछ लोग ने लाश को श्मशान घाट ले गये, लेकिन बहुत पानी बरस रहा था लकड़ी सब गीली थी, ता लाश को वैसे ही छोड़ कर आ गये।

कुछ देर बात गिद्ध पक्षी आये और उस लाश को खाने लगे। तभी आकाशवाणी हुई। इस व्यक्ति की कोई आँखों को नहीं खाना क्योंकि इसने कभी इन आँखों से भगवान के दर्शन नहीं किये, इसके कानों को नहीं खाना क्योंकि इसने कभी गुरुओं के उपदेश को नहीं सुना, पैरों को नहीं खाना क्योंकि कभी तीर्थ यात्रा नहीं की, कभी हाथों को नहीं खाना क्योंकि कभी दान नहीं दिया।

इस प्रकार सभी पक्षी लाश को छोड़कर चले गये इस प्रकार जिस घर में दान, पूजा नहीं होता वह घर श्मशान के समान है। सेठ के समान उनकी दुर्गति होती है और वे घोर संसार सागर में पड़े हुये बिलबिलाते रहते हैं। इसलिये कभी भी लोभ नहीं करना चाहिये।

बंधुओ ! लोभी व्यक्ति को अपने प्राणों की परवाह नहीं होती है वह प्राण देकर भी धन को कमाने का प्रयत्न करता

Scanned with CamScanner

है। इसलिये साहित्यकारों ने धन को ११वाँ प्राण तथा १० वाँ ग्रह माना है। लेकिन आचार्य महाराज कह रहे है कि हे भव्य ! जहाँ तेरे प्राण ही नहीं रहेगे तो फिर धन की क्या कीमत होगी ? वह तुम्हारे किस काम में आयेगा ? अर्थात् कोई भी काम में नहीं आयेगा तथा वह धन अपने स्थान से एक कदम भी आगे नहीं जायेगा। निश्चय से वह धन दान के लिए छोड़कर अन्य सब विपत्तियाँ रुप ही है। क्योंकि लोभी व्यक्ति पहले अपने लिये धन कमाता है और जब उसकी पूर्ति हो जाती है तो फिर उसे अपने बेटे की चिंता होती है और जब बेटों की पूर्ति हो जाती है तो उसकी संतान की चिंता होती है और इस प्रकार वह अनेक पीढ़ीयों के लिये धन को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है लेकिन ध्यान रखना यदि सामने वाले का पुण्य नहीं है तो तुम्हारा कमाया हुआ धन कोई काम में नहीं आयेगा, वह उसे दो दिन में बर्बाद कर देगा। इसलिये कीमत धन की नहीं व्यक्ति के पुण्य की होती है और वह पुण्य धार्मिक क्रियाओं से प्राप्त होता है।

लेकिन पाप का उदय होने से पता नहीं चलता कि धन कहाँ चला गया ? और पुण्य के उदय से भी पता नहीं चलता कि वह धन कहाँ से आ गया ? कहा भी है-

समायाति यदा लक्ष्मी, नालिकेल फलाम्बुवत् ।
विनर्याति यथा लक्ष्मी, गज मुक्ता कपिथ्यवत् ॥

अर्थात् नारिकेल यानि नारियल का वृक्ष जो लगभग ३०-४० फिट ऊँचा होता है यदि सामान्य रुप से इतने ऊपर पानी चढ़ाना हो तो मोटर वगैरह लगाना पड़ती है तब कहीं पानी ऊपर चढ़ता है लेकिन नारियल के अंदर इतनी ऊँचाँई पर बिना मोटर या टुल्लू पम्प के पानी पहुँच जाता है। तथा नारियल का कवच जो इतना कठोर होता है कि पानी में डूबाकर रखने पर भी उसमें पानी नहीं पहुँच पाता है।

कवि ने इसी बात को लिखा है कि इतनी अधिक ऊँचाई पर और इतने कठोर नारियल के अंदर भी जैसे पानी आ जाता है वैसे ही जब व्यक्ति का भाग्य जगता है तो लक्ष्मी भी इसी प्रकार से आ जाती है फिर उसको आश्चर्य होता है कि आखिर में यह सब सम्पत्ति कहाँ से प्राप्त हो गई।

बंधुओ ! जब लक्ष्मी आती है तो छप्पर फाड़कर आती है और जाती है तो चमड़ी उधेड़ कर जाती है जैसे कवीट यानि कैंथ जिसका वजन २००-३०० ग्राम का होता है उसको कोई हाथी सीधा खा ले तो उसकी जठराग्नि से उसके अंदर की सामग्री पच जाती है और जब वह गोबर में निकलता है तो ज्यों का त्यों साबुत रहता है लेकिन उसका वजन लगभग ५० ग्राम रह जाता है। यह सब कैसे हो गया ? तो उसकी जठराग्नि इतनी तेज रहती है कि वह उसको पचा देती है। इसी प्रकार जब व्यक्ति का पाप कर्म का उदय आता है तो लक्ष्मी कहाँ से निकल जाती है उसको भी पता नहीं पड़ पाता है। इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे है कि जो अपने परिवार-कुटुम्ब आदि के काम में आयेगा ऐसा सोचकर उस धन का संचय करता है यह उसकी गलत सोच है उसके लिये भी पुण्य की ही आवश्यकता है। इसलिये ऐसे सोचने की अपेक्षा निरन्तर इस बात का हमको विचार करना चाहिए कि हमारे जीवन में पुण्य के उदय से जो लक्ष्मी प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग कैसे करें ? यदि हम उसका दान आदि में उपयोग करते है तो उसकी वृध्दि होती है और यदि हम उसका उपयोग दान आदि में न करके विभिन्न प्रकार की सन्तति में करते है तो वह विपत्ति का घर बन जाती है।

बंधुओ ! संसार में झगड़े का हेतु धन हुआ करता है। आज जो घर-२ में लड़ाईयाँ छिड़ी हुई है वह एकमात्र धन

Scanned with CamScanner

के कारण छिड़ी हुई है। जब भरत और बाहुबली जैसे महापुरुष में इस सम्पदा, वैभव, जमीन के कारण युद्ध हुआ और ऐसा युद्ध हुआ जिसे इतिहास सदैव याद रखता है। महाभारत का युद्ध इसी बात पर हुआ था कि एक राज्य के दो भाग नहीं १०५ भाग होना चाहिए। और इस युद्ध का कर्णधार शकुनी जो दुर्योधन का मामा था। उसने दुर्योधन को पाठ पढ़ाया-भांजे तुम्हारे पिता ने अच्छा नहीं किया कि आधा राज्य पाँच लोगों में और आधा राज्य १०० लोगों में बाँटा। यह तो तुम्हारे साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है और तुमने जरा भी इस बात पर ध्यान नहीं रखा। अब ध्यान रखो राज्य के २ हिस्से नहीं १०५ हिस्सें होना चाहिए और उसमें से पाँच हिस्सें पांडवों को तथा सौ हिस्से तुमको मिलना चाहिए। और इस छोटी सी चिनगारी ने बहुत बड़ा विकराल रुप धारण कर लिया।

बंधुओ! **लोभ की एक ऐसी ही अवस्था होती है। लोभी व्यक्ति को परमार्थ नहीं दिखता है, न्याय नहीं दिखता है, नीति नहीं दिखती है और तो क्या भाई-भाई और पिता-पिता नजर नहीं आता, माँ-माँ और बहिन-बहिन नजर नहीं आती है। लोभ में आकर व्यक्ति उसको नष्ट करने के लिये तैयार हो जाता है।**

इसलिये कहा है **'बाप भला न भईया सबसे बड़ा रुपइया।'** आज व्यक्ति रुपया, धन-दौलत को सबसे बड़ा मानता है। माता-पिता, भाई आदि की कीमत नहीं करता है। तात्पर्य यह है कि जो धन हम गृहस्थिक कार्यों में उपयोग करते है वह विभिन्न प्रकार के पाप में ही जाता है। इसलिये हे भव्य! ऐसे कार्यों की अपेक्षा सत् कार्य करना चाहिए जिससे हमारा जीवन सार्थक हो सके।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान-तलोद (गुज.)
दिनांक - २३-११-०९
वार - सोमवार

Scanned with CamScanner

प्रव.१३/श्लोक ४३-४६

दान से बरसे पुण्य अपार

◆ सुख, सुंदरता, विवेक बुद्धि ये सभी पात्र दान से ही प्राप्त होते है। विवेक बुद्धि का तात्पर्य ऐसा ज्ञान जो हमारी आत्म साधना में साधक बने, अनूकूल विचारों को उत्पन्न करें, हर परिस्थिति में काम आये। क्योंकि जो ज्ञान परिस्थिति में काम न आये वह ज्ञान, ज्ञान नही है।

बंधुओ! पूज्य आचार्य महाराज पद्मनंदि पञ्चविंशति ग्रंथ के माध्यम से जिनेन्द्र भगवान की साक्षात् देशना का रसपान करा रहे है ये हमारा सौभाग्य है। और जो जिनेन्द्र भगवान की देशना का रस पान करते है वे प्राणी ही वास्तविकता में भाग्यशाली होते है क्योंकि उससे उन्हें मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है और कैसे उस मोक्ष मार्ग पर चलना चाहिए इसकी विधि का अनुभव उत्पन्न होता है और साहस बनता है जिसके द्वारा वे कदम बाई कदम बढ़ते हुए एक न एक दिन उस मंजिल को प्राप्त कर लेते है। लेकिन जो भगवान की देशना का रसपान या स्वाध्याय नहीं करते है उनके लिए मोक्ष और मोक्ष की बातें व्यर्थ होती है फिर उनसे मोक्ष और मोक्षमार्ग बहुत दूर हो जाता है। वे कभी भी उस मार्ग पर सफल नहीं हो सकते है। इसलिये आचार्य भगवन् निरन्तर सत्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे रहे है कि श्रावक का दूसरा धर्म दान धर्म है। जबकि आचार्य कुंदकुंद महाराज ने इसे आद्य धर्म कहा है और श्रावक का दूसरा धर्म जिनेन्द्र भगवान की पूजा है। इसी विषय में आचार्य महाराज आगे लिखते है-

नार्थ : पदात्पदमपि व्रजति त्वदीयो त्यावर्तते पितृवनान्ननु बन्धुवर्गः।
दीर्घे पथि प्रवसतो भवतः सखैकं पुण्यं भविष्यति ततः क्रियतां तदेव ॥४३॥

अर्थ - तुम्हारा धन तुम्हारे स्थान से एक कदम भी नहीं जाता है, इसी प्रकार तुम्हारे बंधुजन श्मशान तक तुम्हारे साथ जाकर वहाँ से वापिस आ जाते हैं। लम्बे मार्ग में प्रवास करते हुए तुम्हारे लिए एक पुण्य ही मित्र होगा। इसलिये हे भव्य! तुम उसी पुण्य का उपार्जन करो।

बंधुओ! धन किसी व्यक्ति के साथ नहीं जाता है चाहे रंक हो या राजा। सभी यहाँ का यहाँ ही रह जाता है। चाहे आप कितना भी कमा लीजिए, कितने भी भण्डार भर लीजिए साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है सब यहाँ का यही रहने वाला है। कहा भी-

इस धरा का इस धरा पर, सब धरा रह जायेगा।
बाँध कर मुट्ठी आया, कर पसारे जायेगा ॥

अर्थात् जब व्यक्ति जन्म लेता है तो कुछ भी साथ में नही लाता है मात्र मुट्ठी बाँध कर आता है। तात्पर्य यह है कि वह चाहता तो था कि मैं कुछ ले जाऊँ लेकिन मुट्ठी बाँधी तो वह खाली की खाली रह गई, उसमें उसके साथ कुछ भी नहीं आया। इसी प्रकार जब वह जाता है तो बहुत कुछ सामग्री अपनी छाती से बाँध लेता है लेकिन वह यहाँ का यही रह जाता है कुछ भी साथ में नहीं ले जा पाता है।

सम्राट सिकंदर जो बहुत बड़ा सम्राट था जिसने अनेक देशों में अपना अधिकार जमा रखा था तथा जिसने

Scanned with CamScanner

दिगंबराचार्य कल्याण मुनि (यूनानी भाषा में कॉलेरस था) को अपना गुरु बनाया था। जब सम्राट सिकंदर की अंतिम बेला आई तो कल्याण मुनि ने उपदेश दिया कि-

हे सिकंदर! सारा वैभव, सारा कुटुम्ब-परिवार यहाँ का यही रहेगा, तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं जा सकेगा। सिकंदर इस बात को सुनकर विस्मित हुआ कि मैंने अथक परिश्रम से इतना सब कुछ पाया है और आप कह रहे है कुछ भी साथ में नहीं जायेगा। महाराज ने कहा-हाँ, कुछ भी नहीं जायेगा। सम्राट ने कहा-सब यही रह जायेगा तो फिर मेरे साथ क्या जायेगा ? महाराज ने कहा-तुमने अपनी जिंदगी में जो कुछ भी अच्छा या बुरा कार्य किया है उसी करनी का फल तुम्हारे साथ जायेगा। यदि आपने अच्छा किया है तो उसका फल अच्छा मिलेगा और बुरा किया है तो उस का फल बुरा मिलेगा। मात्र इतनी ही वस्तु तुम्हारे साथ जायेगी बाकी कुछ भी साथ में नहीं जायेगा, सब यही का यही रह जायेगा। लेकिन व्यक्ति अज्ञानता और मोह के कारण दिन-रात एक करके बाह्य विभूति को एकत्रित करता है परंतु जो आत्मा का वास्तविक वैभव है जो साथ में जाने वाला है उसके विषय में जरा भी नहीं सोचता है। इसलिए हे सम्राट! अंतिम बेला में जो कुछ भी अच्छा करना है कर लो, वही तुम्हारे साथ जायेगा। सम्राट, आचार्य भगवन् के उपदेश को ध्यान से सुनता है और विचार करता है कि बाह्य वैभव मेरे साथ नहीं जायेगा, अभी तक मेरी यही धारणा थी कि यह सब कुछ मेरे साथ जायेगा, इसलिए मैंने इतना सब कुछ एकत्रित करके रखा था लेकिन महाराज कहते है कुछ भी साथ नहीं जायेगा। यह मेरी बहुत बड़ी अज्ञानता थी और मेरी ही नहीं, संसार में न जाने कितने सारे प्राणी ऐसे है जो रात-दिन बाह्य वैभव को एकत्रित करके अपना दुर्लभ जीवन यूँ ही बरबाद कर रहे है कही ओर लोगों में इस प्रकार की भ्रम और भ्रांति न हो इसलिए वह अपने मंत्रियों को बुला कर उसे समझाता है कि जब मेरी मृत्यु हो तो तुम्हें मेरे एक आदेश का पालन करना होगा कि मेरी अर्थी से मेरे दोनों हाथ बाहर निकाल देना। ताकि संसार इस बात को देख सके, सीख सके कि सम्राट सिकन्दर इस धरती से गया तो खाली हाथ ही गया कुछ भी साथ लेकर नहीं गया। मंत्रीयों ने सम्राट सिकंदर की आज्ञा का पालन किया। ताकि संसार का व्यक्ति इस सबक को समझ सके कि व्यक्ति कुछ भी साथ लेकर नहीं जाता है।

बंधुओ! हम सभी को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जब तक जिंदगी है तब तक हम कुछ न कुछ सुकृत कर ले जिससे हमारा सुमरण हो सके और हमें सुगति की प्राप्ति हो सके। यदि हमने इस बात का ध्यान नहीं दिया और निरन्तर संग्रह-२ में लगे रहे तो आचार्य उमास्वामी महाराज 'तत्त्वार्थ सूत्र' के छठवें अध्याय में लिखते है **'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥'** जिस व्यक्ति का मन बहुत आरंभ और परिग्रह के संग्रह में लगा रहता है उसके लिए नरकायु का बंध होता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति की धार्मिक भावना नहीं हो पाती है और न उसे धर्म के शब्द व धर्म के लिये समय मिल पाता है। फिर जिसको धर्म के लिए समय नहीं मिला तो कहा गया- **"जैसी गति वैसी मती"** यदि दुर्गति यानि नरकगति, नरक आयु का बंध हो गया है उसके अच्छे परिणाम यानि भगवान के दर्शन-पूजन के, स्वाध्याय के, गुरुओं की सेवा के विचार उत्पन्न नहीं होते है जबकि सुगति के बंध हो जाने पर ऐसे अनेक शुभ विचार उत्पन्न होते है। अतः हमें सुगति की प्राप्ति के लिये परिग्रह संग्रह से दूर रहना चाहिये। क्योंकि धन, जिसे व्यक्ति दिन-रात कमाता है उसके साथ एक भी कदम चलकर साथ नहीं जाता है। इसी प्रकार कुटुम्ब-परिवार के लोग तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् श्मशान तक साथ जाकर वापिस लौट आते है इससे आगे नहीं जाते है सब वही खड़े रहते है। इसलिये हे भव्य! लम्बे मार्ग में प्रवास करते हुए तुम्हारे लिए मात्र पुण्य ही मित्र है वह ही तुम्हारे साथ

Scanned with CamScanner

जायेगा इसलिये निरन्तर ऐसे अच्छे कार्य को करके पुण्य का उपार्जन करना चाहिए।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है जैसे-२ आप पुण्य कार्यों में लगोगे वैसे-२ आप पाप कार्यों से बच जाओगे। यदि कोई व्यक्ति कुछ समय के लिये भी मंदिर में बैठता है तो उतने समय तक उसका घर से मोह छूट जाता है। यदि वह मंदिर में न आये घर में रहे तो कोई आरंभ-सारंभ करेगा, कोई हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह संचय के भाव करेगा, अनेक प्रकार के विषय-कषाय, राग-द्वेष आदि खोटे परिणाम करेगा जिससे अनेक प्रकार के पाप का आस्रव करेगा। इसलिये इतने समय तक वह पाप से बचा रहेगा। एक बार किसी व्यक्ति ने हमसे पूछा-शास्त्र स्वाध्याय करने से या सुनने से क्या फायदा ? हम उसके अनुसार पालन तो नहीं कर पाते। मैंने कहा-सबसे बड़ा फायदा यह है कि उतने क्षण तक तो आप पाप से बचे रहते है।

एकबार एक सेठजी जिन्हें शास्त्र स्वाध्याय में बैठते ही खूब नींद आती थी और वे स्वाध्याय के अंत तक सोते रहते थे अगल-बगल के लोग उन्हें समझाते कि सेठ जी तुम सुनने के लिए आते हो या सोने के लिये। सेठ जी बोले-आता तो सुनने के लिए लेकिन नींद आ जाती है क्या करूँ ? लोगों ने कहा-इससे अच्छा तो आपको घर में नींद पूरी करके आना चाहिए। तुम्हें तो बिल्कुल नहीं आना चाहिए आदि। अंत में बात बढ़ जाने से मेरे पास आ गई और सेठ जी बोले-महाराज, ये बोलते है बिल्कुल नहीं आना चाहिए और मुझे तो नींद आ जाती है। अब मैं क्या करूँ कल से आऊँ या नहीं आऊँ ? मैंने कहा-रोज आना। यहाँ बैठे-२ सोते भी रहोगे तो कोई परेशानी नहीं। हो सकता कभी आपकी नींद खुले और कोई शब्द आपके कान में पड़ जाये और आपके कल्याण का हेतु बन जाये। और यदि बिल्कुल नहीं आओगे तो वह एक अक्षर का भी लाभ नहीं मिल सकेगा। इसलिए जिनवाणी का हमारे लिए निरन्तर रसपान करना चाहिये चाहे वह समझ में आये या नहीं आये। क्योंकि जितना समय तुम धन संचय में बर्बाद करते हो उससे अधिक धर्म संग्रह में करना चाहिए। कहा भी है

चला लक्ष्मी चला प्राणः, चला जीवित मंदिरे।
चला चले च संसाराः, धर्म एको ही निश्चलः ॥

अर्थात् धर्म ही निश्चल है इसलिये निरन्तर उसकी उपासना करना चाहिए। क्योंकि सम्यग्दृष्टि वीतरागी संत जो मोक्ष को प्राप्त करना चाहते है वे जिस पुण्य के लिए बेड़ी मानते है लेकिन उनके लिए पाप से बचने का अन्य दूसरा उपाय भी नहीं है। समयसार में आचार्य जयसेन महाराज लिखते है कि **दुर्ध्यान वंचनार्थ, आर्त्तरौद्र ध्यान वंचनार्थं, विषय कषाय वंचनार्थं पुण्यं क्रियते, शुभोपयोग क्रियते।** अर्थात् दुर्ध्यान, आर्त्त-रौद्र ध्यान, विषय-कषाय आदि से बचने के लिये निरन्तर भव्य प्राणियों को पुण्य कार्य करते रहना चाहिए। आगे आचार्य महाराज लिखते-

सौभाग्यशौर्यसुखरूपविवेकिताद्या विद्यावपुर्धनगृहाणि कुले च जन्म।
संपद्यतेऽखिलमिदं किलं पात्रदानात् तस्मात् किमत्र सततं क्रियते न यत्नः ॥४४॥

अर्थ - सौभाग्य, शूरवीरता, सुख, सुंदरता, विवेक, बुद्धि आदि, विद्या, शरीर, धन और महल तथा उत्तम कुल में जन्म होना, यह सब निश्चय से पात्र दान के द्वारा ही प्राप्त होता है। फिर हे भव्य जन ! तुम उस पात्र दान के विषय में निरन्तर प्रयत्न क्यों नहीं करते हो ?

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि सौभाग्य यानि अहोभाग्य, पुण्यभाग्य, पुण्योदय है। जब व्यक्ति

Scanned with CamScanner

का होता है उसके लिए कदम-२ पर लाभ प्राप्त होता है। जबकि इसके विपरीत जब दुर्भाग्य होता है तो जहाँ देखो वहाँ अनादर, तिरस्कार, अलाभ प्राप्त होता है और इस दुर्भाग्य से व्यक्ति सदैव दुखी रहता है उसका मन आकुलता-व्याकुलता और असंतोष से भरा रहता है। इसलिए आचार्य महाराज कहते है यदि तुम दुर्भाग्य की अपेक्षा सौभाग्य को चाहते हो सत्पात्र को दान देना चाहिए। दूसरा गुण शूरवीरता है। क्योंकि जो व्यक्ति निरन्तर डरपोक, भयभीत रहता है वह भी अपने जीवन में सही सुख-शांति को प्राप्त नहीं कर पाता है इसलिये यदि भय करना है तो पाप से, संसार भ्रमण से, कर्मों के आस्रव और बंध से करना चाहिए। जबकि सम्यग्दृष्टि जीव निर्भय होता है उसमें भी सत्पात्र के दान से शूरवीरता आती है। शूरवीरता का अर्थ इतना ही नहीं है कि वह किसी को मारने-काटने या लड़ने के लिए तैयार हो जाये। बल्कि वह अपने खोटे संस्कारों को, बुरी आदतों को दूर करने के लिए तत्पर रहे। एक जगह महावीर शब्द की व्युत्पत्ति की गई कि **'महानस अतिवीराः इति महावीरः।'** अर्थात् उन्होंने आत्मा के सारे शत्रुओं को जीत लिया है। जबकि आप शरीर के शत्रुओं को जीतने के लिए शूरवीरता कहते है। लेकिन ऐसा नहीं है। क्योंकि शारीरिक शत्रुओं को जीतना आसान है लेकिन अंतरंग शत्रुओं को जीतना बहुत कठिन है।

बंधुओ ! शूरवीरता के कारण ही व्यक्ति के अंदर नियम-संयम धारण करने के भाव होते है और उसके अंदर में ऐसा साहस हो जाता है कि जो होगा सो होगा, कल की क्या परवाह करना। हमारे संघ में भी एक ऐसे ही महाराज थे जिन्हें कम्पन वात था लेकिन मुनि दीक्षा की भावना रखते थे। मैंने भी उन्हें बोल दिया था कि अभी नहीं आखिरी समय में आपको सीधे मुनि दीक्षा देंगे। चूकि उस समय बटेश्वर क्षेत्र में ७ ऐलक दीक्षा होने वाली थी। तभी एक दिन वे रात्री के समय एक सीढ़ी से किसी कारण से गिर पड़े। जिससे उनका स्वास्थ्य एकदम क्षीण हो गया और डायरिया हो गया। कुछ लोगों ने ग्लूकोज वगैरह लगाने की सलाह दी। मैंने भी कहा- पूछ लो उनसे पूछा गया तो बोले-मरना ही है तो ये सब क्यों ? और धीरे-२ उनकी हालत ओर क्षीण हो गई। तभी वैद्य आये और बोले-कुछ देशी दवाईयाँ आहार में दे तो ठीक रहेगा। और प्रातः ८ बजे उन्हें शुद्धि कराई आहार को उठाने का प्रयास किया लेकिन उनकी हालत फिर से एकदम क्षीण हो गई और लोगों ने तुरंत बुलाया। मैंने कहा-ये दीक्षा लेने का बोल रहे थे तो क्या करना ? मैंने क्षुल्लक जी को बोला-क्षुल्लक जी दीक्षा का समय आ गया है लेकिन कुछ भी संकेत न होने से मैंने सोचा-पता नहीं वे सुन रहे है कि नहीं सुन रहे है। मैंने फिर एक बार जोर से बोला उनके कान में तो उन्होंने आँखे खोली और ऊपर देखा। वहाँ समाज के कुछ लोग थे उन्होंने कहा- यदि उनकी भावना थी तो दीक्षा दे दीजिये। वे सब सुन और समझ रहे है। और मैंने उनको दीक्षा के साथ सल्लेखना व्रत दे दिया। दीक्षा के बाद तो उन्होंने आँखे खोल दी और टकटकी लगा कर देखने लगे। मैंने कहा-वाह। महाराज बोले-घबराहट हो रही है मैं लेटना चाहता हूँ। मैंने कहा-कोई बात नहीं आप यहाँ लेट जाइये। बोले-सभी माता जी बैठी है आपने लंगोटी खोल दी। मैंने कहा-अब तो मुनि हो गये आप। बोले-हाँ। फिर मैंने धीरे-२ पुरानी बात याद कराना शुरु कर दिया कि- आप क्षुल्लक जी है। बोले-नहीं अभी तो आपने मुनि दीक्षा दी है। मैंने कहा-सुन रहे थे आप। बोले-हाँ, मेरी संकेत करने की हिम्मत नहीं थी इसलिये मैं सब देखता-सुनता रहा। मैंने कहा-फिर शर्म की बात क्या जब आप मुनि हो गये है तो ? अब रही सल्लेखना की बात क्योंकि मैंने उन्हें यम सल्लेखना (आजीवन अन्न-जल का त्याग) दी थी लेकिन इस बात के लिये मैंने मुट्ठी में रखा क्योंकि वे चर्चा करने लगे, बिना सहारे के बैठ गए। मैंने पुनः पूछा-महाराज आपकी मुनि दीक्षा हो गई। बोले-हाँ। मैंने कहा-अब आप आहार कैसे करोगे आपको तो कम्पन वात

Scanned with CamScanner

है ? बोले-कल की कल देखी जायेगी, आज से क्यों विचार करना। मैंने कहा-सावधान है। तभी कुछ चौके वाले बोले-संघ जल्दी शुद्धि करके आहार को उठे। हम लोग लगभग ४ महाराज को वहाँ छोड़कर आहार को उठे। आहार के बाद भी चर्चा हुई। मैंने कहा-प्रत्याख्यान करो, आज आपने आहार लिया था। बोले-आहार नहीं हुआ। पूछा-आहार लेने की इच्छा है क्या ? बोले-नहीं, मैं आहार नहीं लूँगा। चर्चा के पश्चात भक्तियाँ हुई और सभी सामायिक के लिये चले गये। सामायिक के समय भी कुछ महाराज को वहाँ रोक दिया था। लेकिन सामायिक समाप्त होने तक पुनः हालत खराब हुई तो समाचार आया कि महाराज की हालत फिर वैसी हो गई। हम तुरंत उनके पास गये और देखा हालत बहुत नाजुक है। मैंने कहा-महाराज सावधान रहिये। तो एक बार उन्होंने हाथ उठा कर संकेत दिया-सावधान है, तथा बोले- पिच्छि से आशीर्वाद दे दीजिए। मैंने आशीर्वाद दिया लेकिन देखते ही देखते उनकी आँखे स्थिर होने लगी। मैंने पुनः याद दिलाया आपका सल्लेखना व्रत है। बोले-हाँ, याद है। और प्रस्थान कर गए।

बंधुओ ! कहने का तात्पर्य है यह उनकी शूरवीरता है। जब उनसे बोलते थे कि आपका अमुक नियम है तो वे कहते थे मैं पालन करूँगा। जबकि सामान्य व्यक्ति घबराता है कि यदि नियम ले लिया तो कल क्या होगा। जबकि आचार्य भगवन् कह रहे है कि तुम कल की बात कर रहे हो यह नहीं सोच रहे हो तुम्हारी मृत्यु की बेला में क्या होगा ?

जबकि वीर कभी इन बातों को नहीं सोचता है। वह तो यही सोचता है जैसी परिस्थिति आयेगी सब में अपने आपको मजबूत रखूँगा। और यदि आवश्यकता पड़ी तो अंत में चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दूँगा।

बंधुओ ! जो व्यक्ति इतनी वीरता हाथ में लेकर चलता है वही सफल हो पाता है। संत मृत्यु को हाथ में लेकर चलते है तभी वे दीक्षा ले पाते है और जो मृत्यु से घबरात वह कभी दीक्षा नहीं ले सकते है। इसलिये संत शूरवीर कहलाते है।

आचार्य महाराज कहते है **सुख, सुंदरता, विवेक बुद्धि ये सभी पात्र दान से ही प्राप्त होते है। विवेक बुद्धि का तात्पर्य ऐसा ज्ञान जो हमारी आत्म साधना में साधक बने, अनूकूल विचारों को उत्पन्न करें, हर परिस्थिति में काम आये। क्योंकि जो ज्ञान परिस्थिति में काम न आये वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है।** आज दुनियाँ भर के लोग बात करते है शरीर अलग है आत्मा अलग है लेकिन थोड़े से ही बीमार होते है तो डॉ.,वैद्य, मम्मी-पापा चिल्लाने लगते है। तो यह विवेक नहीं है। विवेक यानि जो हमें अपनी आत्मा के गुणों की ओर अभिमुख कर दे। इसी प्रकार विद्या, शरीर, धन और महल तथा उत्तम कुल में जन्म ये सभी सत्पात्रों को दान देने से उपलब्ध होते है। ऐसा तुम शास्त्रों में पढ़ रहे हो, गुरुओं के मुख से सुन रहे हो हे भव्य ! फिर तुम ऐसे कार्यों में यत्न क्यों नहीं करते हो ? अर्थात् प्रमाद को छोड़कर जब भी ऐसे अवसर आयें कभी पात्रदान में पीछे मत रहे।

आगे पुनः आचार्य महाराज कहते है

न्यासश्च सद्म च करग्रहणं च सूनोरर्थेन तावदिह कारयितव्यमास्ते ।
धर्माय दानमधिकाग्रतया करिष्ये संचिन्तयन्नपि गृही मृतिमेति मूढः ।।४५।।

अर्थ-प्रथमतः यहाँ धन से कुछ निक्षेप (भूमि में रखना), भवन का निर्माण और पुत्र का विवाह करना है; तत्पश्चात् यदि अधिक धन हुआ तो धर्म के निमित्त दान करूँगा। इस प्रकार विचार करता हुआ ही यह मूर्ख गृहस्थ मरण को

Scanned with CamScanner

प्राप्त हो जाता है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज एक अज्ञानी व्यक्ति का चित्रण करते हुये कह रहे है कि मूढ व्यक्ति यही सोचता है कि मैं धन कमाऊँगा और उसके लिए जमीन में गाढ़ कर रख दूँगा। चूंकि पुराने समय में बैंक नहीं थे इसलिये धन को जमीन में गाढ़ कर रखते थे लेकिन आज बैंक में जमा कर देते है जिससे ब्याज मिलेगा। तथा उस धन के द्वारा सुंदर एवं बड़ा महल बनाऊँगा और अपने बेटे की धूम-धाम से शादी करूँगा और इसके उपरांत यदि धन बचा तो दान करूँगा। इस प्रकार का विचार करता हुआ वह मूढ गृहस्थ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

बंधुओ ! सुभाषितकार लिखते है कि संसार की कितनी बिडम्बना है कि जहाँ व्यक्ति को मृत्यु का ध्यान रखना चाहिये और उसके पहले सावधान होना चाहिए उसको तो भूल जाता है लेकिन मुझको अमुक काम करना-२ यह सोचते-२ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। और सब सोच-विचार में ही रह जाता है कुछ भी नहीं कर पाता है। लेकिन जो ज्ञानी होते है, वे मुझे अमुक करना-२ इसको भूल जाते है मैं मरूँगा-२ एक दिन मेरी भी मृत्यु होगी इसको ध्यान रखते है। महाराजा आदिनाथ ने एक नीलांजना की मृत्यु को देखकर विचार किया था कि एक दिन मुझे भी इस शरीर को छोड़कर जाना पड़ेगा, मरना पड़ेगा तो क्यों न क्यों मृत्यु के पहले सावधान हो जाए और उसी समय उन्हें वैराग्य हो गया। फिर उन्होंने न मूहूर्त देखा, न समय, न स्थान देखा और दीक्षा के लिये चल पड़े और आत्म कल्याण कर लिया। बंधुओ। जिंदगी में ऐसे बहुत से अवसर मिलते है लेकिन उनमें से कुछ ऐसे ही कारण होते है जो हृदय को छू जाते है और उनसे हृदय परिवर्तित हो जाता है। इसलिये हे भव्य ! तू निरंतर कार्य करने की इस मूर्खता को छोड़कर धर्म का स्मरण कर। क्योंकि संसार के कार्य तो ऐसे है जो जिंदगी में पूरे होने वाले नहीं है। कहा भी-

जब तक की जिंदगी है, फुर्सत न होगी काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो, प्रेम करो भगवान से॥

अर्थात् जब तक जिंदगी है तब तक काम निरन्तर चलते रहेगे कभी उनसे विराम होने वाला नहीं है। क्योंकि आज के व्यक्ति के पास इतनी अधिक विचारधारायें है कि उसको पूर्ण करने के लिये यदि ब्रह्मा भी तैयार हो जाये तो उसे एक व्यक्ति के विचारों को पूर्ण करने के लिये दस भव धारण करना होगे तो भी पूर्ण नहीं होंगे। इसलिये हे भव्य ! संसार की कल्पनाओं को छोड़कर हम परमार्थ के विषय में कदम बढ़ाये। हो जीवन पाना सार्थक होगा।
आगे आचार्य महाराज लिखते है-

किं जीवितेन कृपणस्य नरस्य लोके निर्भोगदान धनबन्धनबद्धमूर्तेः।
तस्माद्वरं बलि भुगुन्नतभूरिवाग्भिर्व्याहूतकाककुल एव बलिं स भुङ्क्ते॥४६॥

अर्थ - लोक में जिस कंजूस मनुष्य का शरीर भोग और दान से रहित ऐसे धनरुपी बन्धन से बंधा हुआ है उसके जीने का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् उसके जीने से कुछ भी लाभ नहीं है। उसकी अपेक्षा तो वह कौवा ही अच्छा है जो उन्नत बहुत वचनों के द्वारा अन्य कौवों के समूह को बुला कर ही बलि को खाता है।

बंधुओ ! कृपण यानि कंजूस व्यक्ति के जीने से क्या फायदा ? तथा ऐसे कंजूस व्यक्ति के धन से क्या फायदा है ? क्योंकि जो कमाये हुये धन का न तो स्वयं अपने भोगोपभोग में उपयोग कर पाता है और न दान आदि धर्म कार्य में उपयोग कर पाता है। ऐसे व्यक्ति से तो कौआ अच्छा है क्योंकि जब वह भोजन करने के लिये बैठता है तो अकेला नहीं खाता है पहले वह काँव-२ करके चारों तरफ से सभी कौओं को बुला लेता है और उसके उपरांत ही

Scanned with CamScanner

खाने को बैठता है। इसलिये हे भव्य ! इस लोभ को छोड़कर निरन्तर सत्पात्रों के लिये दान दे। और अपने साथ सत्पात्रों को साथ लेकर बैठे, यही गृहस्थ जीवन की सार्थकता है। इसके बिना गृहस्थ जीवन की शोभा नहीं है।

एक सेठ जी थे जिनके ७ बेटे थे जिसमें ७ बेटों में से ६ बेटों की शादी हो गई ७वाँ बेटा कुवाँरा था। सभी धार्मिक संस्कारों से विहीन थे उन्हें पता भी नहीं था कि मंदिर कहाँ है, अभिषेक-पूजन आदि के विषय से भी अनभिज्ञ थे। धीरे-धीरे पुत्र बड़े हुये, और बेटों की शादियाँ की जिसमें छह ही बेटों की शादी हुई और जो छह बहुएँ आई वे भी व्यवहारिकता एवं धार्मिकता से रहित थी। सेठजी बहुत परेशान थे कि जो भी दुकान पर जाता, अपने-अपने खर्च के लिये पैसा लेता और चला जाता, घर में बहुओं से परेशान, कोई काम नहीं करना चाहता, जिससे घर में चौबीस घन्टे कलह होती। सुबह सास-ससुर की गंगा-जमुना प्रारम्भ होती, तो रात तक नहीं रुकती। सुबह से गली-गलोच तथा लड़ाइ-झगड़े से मंगलाचरण होता और, तानाशाही से स्तुतियाँ प्रारम्भ होती। कोई एक दूसरे का मुख नहीं देखना चाहता। पिताजी रिश्तेदारों में जाते तो वहाँ अपमान तथा तिरस्कार होता। कोई पूछता ही नहीं। दुकानदारों के यहाँ जाते तो वे वहाँ खड़े नहीं होने देते। सामग्री देने को मना कर देते। दुकान जाते तो नौकर परेशान करते। घर आते तो पत्नि तथा बहू-बेटे परेशान करते। क्या करें ? इसी बीच सेठजी ने अपने छोटे बेटे की शादी कर दी। जब पाप का उदय रहता है तब विपत्तियाँ चारों ओर से घेर लेती हैं। और जब पुण्य का उदय आता है तो अनायास उपलब्धियाँ मिल जाती है ? और सेठजी की सातवीं बहू धार्मिकता, नैतिकता, व्यवहारिकता से परिपूर्ण थी, पढ़ी लिखी थी। शादी के बाद वह बहू अपनी सास के पास जाती और कहती है -माँ ! आज मेरी शादी का पहला दिन है, मैं जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करना चाहती हूँ। माँ, भगवान का नाम सुनती है तो आश्चर्य करती है और कहती है- बहु, कौन से भगवान ? कैसे भगवान ? मैं नहीं जानती किसी भगवान को ? बहू जब सास की इस प्रकार की बात सुनती है तो घबड़ा जाती है। सोचती है मेरे माँ-बाप ने कहाँ शादी कर दी ? कैसे घर में पटक दिया, जहाँ धर्म का नाम नहीं है ? लेकिन ज्ञान का आश्रय लेती है तो सोचती है जो होना था सो हो गया। अब क्या हो सकता है, और वह कुछ उपाय निकालती है, संध्या के समय सास के पास जाती है और कहती है,-माँ जी ! आज से आपका पूरा काम मैं करूँगी आप निश्चिंत रहे, वह उनके पैर दबाती है, बिस्तर लगाती हैं माँ ने जब यह सब देखा तो उसे लगा कि, कहीं मै स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। लेकिन छोटी बहू ने पुनः कहा तो सास की आँखों से आँसू बहने लगे कि मैंने कभी भी इस प्रकार के शब्द अपने जीवन में नहीं सुने। बहू ने कहा-माँ, आप अब कुछ भी नहीं करेंगे। सास कहती-ठीक है बेटा। दूसरे दिन वह अपनी बड़ी जेठानी के पास जाती है और कहती है-दीदी, आप क्या कर रही है। बड़ी जेठानी बोली-तुमको दिखाई नहीं देता मैं भोजन बना रही हूँ। वह कहती है-दीदी, आज से मैं भोजन बनाऊँगी क्योंकि वह देखती थी कि जो दीदी रोटी बना रही है तो अपने लिये तथा अपने पति के लिए अच्छी-अच्छी और सभी के लिए जली-बरी, कच्ची रोटियाँ बनाकर के रख रही है। बड़ी जेठानी खुश हो जाती है कि, मैं यही तो चाहती थी कि मेरी देवरानी सारा काम करे। तीसरे दिन दूसरी जेठानी के पास जाती और उनसे पूछती है-दीदी, आप क्या कर रही हैं ? वह कहती है-देखती नहीं, कपड़े धो रही हूँ। वह कैसे ? अपने तथा पति के कपड़े सर्फ-साबुन लगाकर तथा शेष के पानी में निकाल-निकाल कर रख रही है, वह कहती है-दीदी, आज से मैं सबके कपड़े धोऊँगी। वह भी खुश हो जाती है; कि मैं यही तो चाहती थी। अब वह चौथे दिन तीसरी जेठानी के पास जाती है और उनसे पूछती है-दीदी, आप क्या कर रही है ? वह कहती है-देखती नहीं, मैं झाडू लगा रही हूँ। वह कैसे कि अपने कमरे का कचरा बाहर निकाल रही है और पौंछा लगा रही है शेष कमरों को झाडू लगाती तो इधर का कचरा उधर और उधर का कचरा इधर कर देती। छोटी बहू बोली-दीदी, आज

Scanned with CamScanner

से मैं आपके हिस्से का सारा काम करूँगी। वह भी खुश हो जाती है कि, मै यही तो चाहती थी कि मेरी देवरानी सारा काम करे। इस प्रकार उसने रोज-रोज सभी जेठानी के पास जाकर सभी के हिस्से का काम अपने हाथ में ले लिया जिससे सभी जेठानी खुश हो गई। एक दिन उसने सभी से कहा- मै सबके हिस्से का काम करूँगी लेकिन आप सभी को मेरी बात मानना पड़ेगी। सभी बोले- ठीक हैं।

ओर छोटी बहू ने सभी के कपड़े सुव्यवस्थित तरीके से धोकर सोले में रखे और प्रातःकाल सभी को जल्दी उठा दिया। सभी सोकर उठ गये। बहू ने कहा-सभी लोग स्नान करें, जहाँ लोग हफ्ते-हफ्ते नहीं नहाते थे वहाँ आज प्रातः होते ही सभी को नहाना है सभी को आश्चर्य हुआ। सभी ने छने प्रासुक जल से स्नान कर लिया तथा सभी ने सोले की धार्मिक ड्रेस पहनी। बहु ने सभी के हाथ मे चावल दिये और कहा-चलो, सभी को भगवान के दर्शन करने चलना है। सभी सोच रहे थे पता नहीं ये बहू अब क्या करेगी ? सभी मंदिर गये अब बहू मंत्र बोलती जाती ओर सभी लोग भी कुछ-कुछ शब्दों का उच्चारण करते जाते क्योंकि सभी धर्म संस्कार से शून्य थे अन्य लोग भी उस जुलूस को देखकर आश्चर्य चकित थे। दर्शन के पश्चात् सभी घर वापिस आ गये। तब बहू ने कहा-सब आराम करो, मैं सभी के लिए भोजन तैयार करती हूँ। भोजन तैयार होने के बाद उसने घर के दरवाजे पर चौक पूरा तथा सभी से कहा-चलो, यह सामग्री लेकर दरवाजे पर खड़े होना है। पुण्योदय, कि एक दिगम्बर संत आहार चर्या के लिये ईर्या समिति के साथ आ रहे थे। बहू ने जैसे ही देखा तो बोली-हे स्वामी ! नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु। सभी लोग बहू के अनुसार बोलने लगे। मुनि महाराज का नियम था जहाँ आठ जोंड़े पड़गाहन करेंगे वहाँ ही आहार करेंगे और मुनि महाराज की विधि मिल गई। सभी ने नवधा भक्ति पूर्वक पड़गाहन कर मुनिराज को आहार दिया और मुनि महाराज का निरंतराय आहार हो गया तथा मुनि महाराज जंगल की ओर चले गये। अब घर के सभी सदस्य मिलकर के भोजन करने बैठे तब सभी ने कहा- आज तो भोजन का स्वाद कुछ दूसरा ही हैं। रोज भी यही सामग्री रहती थी लेकिन ऐसा स्वाद नहीं आता था। आज तो आनंद आ गया, मन प्रसन्न हो गया। छोटी बहू ने कहा-धर्म नहीं था इसलिये भोजन में आनंद नहीं आता था। क्योंकि मुनियों को आहार दान देने के पश्चात जो सामग्री शेष रहती है आचार्य कुंदकुंद महाराज रयणसार में कहते है। वह संसार के सुख को प्राप्त करता है। ऐसा आनंद आता है। उसके बाद सभी बहू-बेटियाँ आनंद एवं खुशी के साथ कर्तव्य में लग गये। अब वह परिवार सुसंस्कारित व प्रतिष्ठित कहलाने लगा। इस प्रकार एक कर्तव्यशील, संस्कारवान दीपक, सारे बुझे दीपक को जलाकर प्रकाशवान कर देता हैं।

इस लिये परिवार के बीच में एक ऐसा धार्मिक व्यक्ति होना चाहिए कि जो सारे परिवार को बदल दे। और वह व्यक्ति भी धन्य है जो अपने परिवार का ऐसे संस्कार दे देता है कि सारे घर में एक कमाता है और सभी लोग बैठे-२ खाते है। इस प्रकार हमें अपने धन का सदुपयोग दान आदि कार्यों में करना चाहिये।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान-तलोद (गुज.)
दिनांक -२४-११-०९
वार-मंगलवार

Scanned with CamScanner

प्रव.१४/श्लोक-४७-४८

धन का विचार

◆ कंजूस के धन की कभी वृद्धि नहीं होती है जबकि उदार प्रकृति के व्यक्ति जो अहर्निश दान करते रहते है इसलिये उनका धन निरन्तर बढ़ता ही बढ़ता रहता है जैसे खेत में बीज बोने से फसल आती है और वह बीज की अपेक्षा अधिक मात्रा में रहती है ।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज ने पूर्व गाथा में बताया था कि भोजन करो तो मिल कर करो और सत्पात्रों को आमंत्रण करके करो । जो ऐसा करता है वही श्रेष्ठ श्रावक कहलाता है अन्यथा जो अकेले-अकेले तथा सत्पात्रों के बिना भोजन करता है वह कोओं से भी गया बीता होता है क्योंकि कौआ एक बार अपने सजातियें को बुला करके खाता है और मनुष्य अकेले-२ खा लेता है । आगे इसी बात को पुन: कहते है ।

औदार्ययुक्तजनहस्तपरम्पराप्तव्यावर्तनप्रसृतखेदभराति खिन्ना: ।
अर्था गता:कृपणगेहमनन्तसौख्यपूर्णा इवानिशमबाधमतिस्वपन्ति ॥४७॥

अर्थ - दानी पुरुषों के हाथों द्वारा परम्परा से प्राप्त हुए आने-जाने के विपुल खेद के भार से मानो अत्यन्त व्याकुल होकर ही वह धन कंजूस मनुष्य के घर को पाकर अनंत सुख से परिपूर्ण होता हुआ निरन्तर निर्बाध स्वरूप से सोता है ।

बंधुओ ! धन भी विचार करता है कि जिन प्राणियों के अंदर औदार्य भाव (उदार भाव) होता है अर्थात् जो प्राणी निरन्तर दान देते रहते है हम ऐसे व्यक्ति के पास रह रहे है यह तो बड़ी परेशानी है । क्योंकि हम आयेंगे और वह मुझे दान दे देगा और दान दे देगा तो हमें भी उसके पास बार-२ आना पड़ेगा । क्योंकि दान देने से पुण्यास्रव होता है और पुण्यास्रव से धन को न चाहते हुये भी आना पड़ता है इसलिये मुझको उसके यहाँ जाने में परेशानी है मुझे उसके यहाँ एक क्षण भी विश्राम नहीं मिल पाता है । इसलिये मुझे जो कृपण है उसके यहाँ रहना ठीक है कम से कम बारबार आना-जाना तो नहीं होता है । जितना रहता है उतना का उतना ही रहता है न बढ़ पाता है न घट पाता है । इसलिये मुझे उसके पास अनंत सुख है ।

बंधुओ ! संसार में हर व्यक्ति का सुख अपना-२ तथा अलग-२ होता है । जैसे ज्ञानी के लिए ज्ञान में, ध्यानी के लिए ध्यान में, दानी के लिये दान में, त्यागी के लिये त्याग में, आलसी के लिये आलस / सोने में, धनवान के लिये धन संग्रह में सुख होता है क्योंकि धन सोचता है कंजूस बार-२ हमें परेशान नहीं करता है आराम से तिजौरी में बंद करके रखता है और हम सालों साल उसमें सोते रहते है इस प्रकार धन का विचार होता है । तथा पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि **कंजूस के धन की कभी वृद्धि नहीं होती है जबकि उदार प्रकृति के व्यक्ति जो अहर्निश दान करते रहते है इसलिये उनका धन निरन्तर बढ़ता ही बढ़ता रहता है जैसे खेत में बीज बोने से फसल आती है और वह बीज की अपेक्षा अधिक मात्रा में रहती है** । इसलिये निरन्तर दान आदि कार्य करते रहना

Scanned with CamScanner

चाहिये।

आगे आचार्य महाराज लिखते है-

उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं च विद्धि ॥४८॥

अर्थ - गृह से रहित मुनि को उत्तम पात्र, अणुव्रतों से युक्त श्रावक को मध्यम पात्र, अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य पात्र, सम्यग्दर्शन से रहित होकर व्रत समूह का पालन करने वाले मनुष्य को कुपात्र तथा दोनों से रहित (सम्यग्दर्शन और व्रत) मनुष्य को अपात्र समझो।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि जो व्यक्ति को पतित से पावन बना दे, जो प्राणी को संसार समुद्र से पार करा दे वह सत्पात्र है। ऐसे सत्पात्र उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार के है। जिसमें जो रत्नत्रय से सम्पन्न है ऐसे मुनि, आर्यिका ये सब उत्तम सत्पात्र है। जो अणुव्रती / देशव्रती श्रावक है ऐसे ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, प्रतिमाधारी त्यागी वे सभी मध्यम सत्पात्र है। और जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न है लेकिन व्रत नहीं है ऐसे चतुर्थ गुणस्थान व्रती अविरत सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य सत्पात्र है। चूंकि तीनों धर्म के रास्ते पर चलते है और जो इनका आश्रय लेते है उसका भी कल्याण होता इसलिये इन्हें सत्पात्र कहा है। इसके अलावा संसार में कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जिनके अंदर में व्रत तो है लेकिन सम्यग्दर्शन नहीं है वे सभी कुपात्र है। कुपात्र का तात्पर्य पत्थर की नाव की तरह है क्योंकि जो नाव स्वयं पार नहीं हो सकती वह दूसरों को पार कैसे करेगी ? अर्थात् जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है वहाँ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी नहीं है फिर जिसके पास रत्नत्रय ही नहीं है वह दूसरों को रत्नत्रय का हेतु कैसे बनेगा ? इसलिये वह कुपात्र है। और जिसके पास दोनों ही (सम्यग्दर्शन और व्रत) नहीं है वह अपात्र है। और कुपात्र तथा अपात्र दोनों एक ही कोटी के है इसलिये इनको दान देने से मोक्षमार्ग की वृद्धि नहीं होती है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि उन्हें दान ही नहीं देना चाहिये अर्थात् भूखे-प्यासे है तो उन्हें भूखे-प्यासे रहने देना चाहिये नहीं, उन्हें करुणा दान देना चाहिए।

बंधुओ ! हमारे शास्त्रों में लिखा है कि एक तिर्यंच को भी भूखा नहीं रखना चाहिए। तो फिर यदि ऐसे भी कोई पात्र हमें मिल जाये जिनके पास सम्यग्दर्शन नहीं है। इस बात का खुलासा करते हुये पं.आशाधर जी ने सागार धर्मामृत में लिखा है-कि हम किसी के अंदर की परिणति को नहीं समझ सकते है या उसके सम्यग्दर्शन की परीक्षा नहीं कर सकते है। हम अधिक से अधिक इतना देख सकते है कि मंदिर जाता है, स्वाध्याय करता है आदि इस प्रकार अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करता है तो समझ लेते है कि वह सम्यग्दृष्टि है वे लिखते -

भुक्तिमात्र प्रदाने नहि, का परीक्षा तपस्विनाम् ।
ते सन्तः सन्त्वसन्तो, वागृ ही दानेन शुद्धयति ॥

अर्थात् तुम खाली एक बार ही भोजन देते हो फिर साधु की क्या परीक्षा करना ? क्योंकि गृहस्थ श्रावक की दान देने मात्र से शुद्धि हो जाती है।

इसलिये आचार्य महाराज कह रहे है कि घर में आये हुये साधकों की कोई परीक्षा नहीं की जाती है बस इतना देखा जाता है कि वह रत्नत्रयधारी है, नग्नमुद्रा के धारी है, देशव्रती या महाव्रती है, पिच्छि कमण्डल धारी है आदि। बस इतना देखते ही हम उनका सम्मान करते है और उन्हें सत्पात्र मान कर आहार कराते है।

Scanned with CamScanner

आचार्य इन्द्रनंदी महाराज ने इन्द्रनंदी नीतिशतक में भी लिखा कि जब एक पाषाण या धातु की प्रतिमा में स्थापना निक्षेप के द्वारा हम यह कल्पना कर लेते है कि यह भगवान है और उनकी पूजा-अभिषेक करते है तो उसका फल मिलता फिर साक्षात् निर्ग्रंथ संत हो, कोई चेतन आत्मा हो और साक्षात् देख रहे है कि पिच्छी-कमण्डल है एवं रत्नत्रयधारी है तो फिर हम क्यों ज्यादा उलझे ? कि ये द्रव्यलिंगी है या भाव लिंगी, झूठे है या सच्चे। क्यों कि मनःपर्ययज्ञानी भी मात्र, इस बात को जान सकते है कि वे 'मन में क्या सोच रहे हे,'। जान सकते है वे भी आत्मीय गुणो को नहीं जान सकते है क्योंकि आत्मीय गुण अरुपी तथा चेतन होते है उसको केवल एक केवलज्ञानी ही जान सकते है, छद्मस्थ नहीं। तथा हम भी बहुत से बहुत ऊपरी अवस्था को देखकर ही कह सकते है कि अमुक व्यक्ति सम्यग्दृष्टि है क्योंकि वह देव-शास्त्र-गुरु का भक्त है, संसार से भयभीत है, आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान सहित है लेकिन हमारा यह जानना स्थूल है इसमें धोखा भी हो सकता है क्योंकि ये सब क्रियायें एक मिथ्यादृष्टि में भी हो सकती है। फिर भी भाव निक्षेप से हम रत्नत्रय धारी की ही सेवा व उन्हें नमस्कार करते है निश्चय से वे समझे और केवली भगवान समझे। क्योंकि जैन धर्म-भाव प्रधान धर्म है जैसा व्यक्ति का भाव होता है वैसा ही उसके लिये फल मिलता है। इसलिये हम सत्पात्रों को देखकर उनकी सेवा, भक्ति करे और पवित्र भाव रखें।

एक बार की बात थी राजा श्रेणिक और रानी चेलना भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में गये। राजा श्रेणिक सम्यग्दृष्टि थे और भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख श्रोता थे। तथा स्वर्ग के देवताओं में भी उनके सम्यग्दर्शन की बड़ी प्रशंसा थी तभी दो देवता के मन में जिज्ञासा हुई और वे स्वर्ग से चलकर राजा की परीक्षा करने के लिये आ गये और उन्होंने नदी के किनारे आकर अपना रुप बदल लिया एक ने मुनि का तथा दूसरे ने आर्यिका का रुप बना लिया। मुनि के रुप में स्थित देव तालाब के किनारे पर पहले से जाल फैलाकर बैठ गया क्योंकि राजा श्रेणिक को वहाँ से गुजरना था कि राजा की दृष्टि मुझ पर पड़ेगी। तभी राजा के लिए गुप्तचरों ने आकर बताया कि- वहाँ तालाब के किनारे एक मुनि है। मुनि का नाम सुनते ही राजा श्रेणिक खुश हो गये और बोले-तो उनके दर्शन करेंगे। लोगों ने कहा-महाराज वहाँ जाना ठींक नहीं है वे दर्शन के लायक नहीं है। राजा ने कहा-ऐसा नहीं कहना चाहिए। लोगों ने कहा-महाराज हमारी भी प्रार्थना सुन लीजिए, लेकिन श्रेणिक ने नहीं सुनी। तब लोगों ने कह दिया- वो जाल फैलाये बैठे है। फिर भी राजा वहाँ गये और जाते ही उन्हें नमस्कार किया।

और कहा-भगवन् ! ये क्या कर रहे हैं आप ? उसने कहा-क्या कर रहे है आप राजा है और आँखों वाले है देख कर भी पूछते हो ? श्रेणिक ने कहा- हाँ, महाराज, चूँकि आँखे तो उतना ही देख सकती है जितना उसमें दिखता है। पूछने से उसके ओर आगे की बात मालूम चल जाती है इसलिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ। मुनिराज ने कहा- ठीक है मैं बतलाता हूँ देखो मेरे बगल में जो आर्यिका बैठी है वो गर्भिणी है और उसको दोहला हुआ है कि मुझे ये सब खाना है इसलिये उसकी पूर्ति कर रहा हूँ। राजा श्रेणिक विचार मग्न हो जाते और विनय से प्रार्थना करते है कि आप यह सब काम मत कीजिये। राजा श्रेणिक की बात सुनकर मुनि रुप में स्थित देव अपने असली रुप में प्रकट हो गया और बोला- मैं स्वर्ग का देव हूँ आपकी भक्ति की परीक्षा करने आया था कि इस सारे दृश्य को देखकर आपका मन क्या बोलता है ? आपकी परिणति कैसी होती है ? सोचिये एक महाराजा श्रेणिक और एक हम जो इतनी सारी परीक्षायें करने लगते है जबकि हमें एक मात्र एक समय भोजन ही प्रदान करना है। इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि गल्ति दिख जाये तो चुपचाप रह जाये, नहीं, हम विनय और मर्यादा का ध्यान रखते हुये उन्हें समझाने का प्रयत्न करें कि जिसस उनमें परिवर्तन आ जाये। कदाचित् समझाने पर भी सफलता न मिले तो फिर उनका उपवास

Scanned with CamScanner

नहीं कराया जा सकता है और यदि उपवास भी कराओंगे तो कितने कराओंगे और ऐसे मौके पर यदि उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई तो क्या आप सम्यग्दृष्टि कहलाने के पात्र रहोंगे ? हमारा धर्म तो चींटी की रक्षा की बात करता है और वहाँ पंचेन्द्रिय की हिंसा हो रही है।

बंधुओ ! जैन धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है जिसमें बहुत सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचना की गई है। जिसमें सत्पात्र को छोड़कर अन्य का सहयोग करना करुणा दान कहा है। मेरी भावना में भी कहा है -

दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ॥५॥

अर्थात् दीन-दुखी जीवों को देखकर जिसके अंदर करुणा उत्पन्न होती है वह सम्यग्दृष्टि है। और जिसके अंदर दीन-दुखी जीवों को देखकर करुणा उत्पन्न नहीं हो रही है वह सम्यग्दृष्टि कहलाने का पात्र नहीं है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि का हृदय तो बहुत कोमल होता है वह एक छोटे-२ प्राणी की रक्षा में तत्पर रहता है इसलिये यदि आप के सामने भूखा-प्यासा आ जाये तो उसे भोजन-पानी करा दीजिये लेकिन उसको सत्पात्र व धर्म नहीं कहना। तथा करुणा के अवसर पर पैसे भी नहीं देना क्यों कि पैसे ले जाकर कोई जुआ खेलता है, तो कोई शराब पीता है, तो कोई मांस-अण्डे खाता है इस प्रकार दुर्व्यसनों में जैसा वो लाते है वैसा ही गँवा देते है और जितना पाप वो करेगा उसका दसांश पैसा देने वाले के पास जाता है क्योंकि अगर देने वाला नहीं देता तो वह पाप नहीं करता। लेकिन जब वही दान हम सत्पात्रों में देते है और उसके द्वारा वो जितनी धर्म साधना-आराधना, त्याग-तपस्या करते है उससे जो पुण्य लाभ होता है उसका दसांश भाग उस श्रावक के लिये प्राप्त होता है।

इसलिये जैन धर्म में दान की महिमा गाई गयी है। लोग बोलते है महाराज-क्या बात है कि इतनी सारी भीड़ लगी रहती है, क्या जैन साधु तंत्र-मंत्र या कोई ऐसा आशीर्वाद देते है जिससे उनके पास धन-दौलत बनी रहती है ? मैंने कहा-कुछ भी नहीं देते है। लोगों ने कहा-फिर इतनी भीड़ कैसे लगी रहती है ? मैंने कहा-बिना दिये ही उनको बहुत कुछ मिलता है। फिर बनियाँ बहुत चतुर होते है वे सोचते है कि कहाँ से मिलेगा तो वही देना चाहिए। इसलिये वे दान देने के लिये लाइन में खड़े रहते है और जो नहीं दे पाते है वे देखने के लिये तैयार रहते है। क्योंकि शास्त्र कहते है कि यदि आप कृत नहीं कर सकते है तो कारित कीजिए और कारित भी नहीं कर सकते हो तो अनुमोदना कीजिए। जब कभी महाराजों का आहार होता है तो बहुत सारे लोग आहार देखते है और भगवान से प्रार्थना करते है कि हे भगवन् ! महाराजों का आहार निर्विघ्न हो और वे बहुत अच्छी तरह से रत्नत्रय की साधना करते रहे। इसलिये शास्त्रों में कृत, कारित, अनुमोदना का बराबर फल मिलता है अतः हमें सत्पात्रों को निरन्तर दान देते रहना चाहिए।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान : तलोद (गुज.)
दिनांक - २५-११-०९
वार-बुधवार

Scanned with CamScanner

प्रव.१५/श्लोक ४९-५०

दान करें हम जिसका ?

◆ जो आहार दान देता है वह कभी भूखा नहीं रहता, उसे भोजन के लिये नहीं तरसना पड़ता है। औषधी दान देने वाला रोगी नहीं होता, कदाचित् बीमार हो भी जाये तो थोड़ी सी औषधी में ही ठीक हो जाता है। ज्ञान दान देने से ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है मानो सरस्वती ही कण्ठ में विराजमान हो। अभय दान देने से अपने आप सुरक्षा-व्यवस्था मिलती है, विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता है।

आगे आचार्य महाराज पुनः कहते है-

तेभ्यः प्रदत्तमिह दान फलं जनानामेतद्विशेषणविशिष्टमदुष्टभावात् ।
अन्यादृशेऽथ हृदये तदपि स्वभावादुच्चावचं भवति किं बहुभिर्वचोभिः ॥४९॥

अर्थ -उन उपर्युक्त पात्रों के लिये दिये गये दान का फल मनुष्यों को इन्हीं विशेषणों से विशिष्ट प्राप्त होता है अथवा बहुत कहने से क्या ? अन्य प्रकार के अर्थात् दूषित हृदय में भी वह दान का फल स्वभाव से अनेक प्रकार का प्राप्त होता है।

बंधुओ ! आचार्य महाराज कह रहे है कि उत्तम, मध्यम व जघन्य सत्पात्र को दान देने से अपूर्व फल मिलता है। अदुष्टमान से दिये गये दान का फल उत्तम भोगभूमि है। पर ऐसा सर्वथा नहीं है सत्पात्र को दान देने का फल स्वर्ग की प्राप्ति भी है लेकिन जिसे मनुष्य और तिर्यंच आयु का बंध नहीं हुआ है। लेकिन जिसे नरक आयु का बंध हो जाता है उसके दान देने के भाव नहीं होते क्योंकि नरक आयु अशुभ आयु है। राजा श्रेणिक जिसे नरक आयु का बंध था तो दान के भाव नहीं हुये थे। उसने भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में जाकर पूछा-भगवन् ! मेरे दान देने के भाव क्यों नहीं होते ? भगवान ने कहा-कि तुमको नरक आयु का बंध है तुम चाहते हुये भी दान नहीं दे सकते हो। इसी प्रकार वनवास काल में भी राम-सीता ने आहार दिया लेकिन लक्ष्मण ने नहीं दिया क्योंकि अशुभ आयु का बंध था। ऐसा व्यक्ति देशव्रती नहीं हो सकता ऐसा नियम है। लेकिन जिसने मनुष्य व तिर्यंच आयु का बंध किया है वह दान दे सकता है जिसके फल से वह भोगभूमि का मनुष्य व तिर्यंच हो सकता है क्योंकि सत्पात्र को दान दिया है। इस प्रकार उत्तम सत्पात्र को दान देने से उत्तम भोगभूमि का मनुष्य व तिर्यंच, मध्यम सत्पात्र को दान देने से मध्यम भोगभूमि का मनुष्य व तिर्यंच तथा जघन्य सत्पात्र को दान देने से जघन्य भोगभूमि का मनुष्य व तिर्यंच होगा परन्तु कर्मभूमि का मनुष्य व तिर्यंच नहीं होगा।

भोगभूमियाँ जीव मंद कषायी होते है, कल्पवृक्ष से ही उनका जीवन चलता है, वे मृत्यु के पश्चात् नियम से स्वर्ग जाते है। लेकिन कुपात्र तथा अपात्र को दान देने का फल अच्छा नहीं है क्योंकि जिनका उपयोग निरन्तर पाप में लगा हुआ है ऐसे जीवों को दान देने या मिथ्यादृष्टि को दान देने से कुभोगभूमि में जन्म होता है। वहाँ भी वे जीव सुखी रहते है लेकिन सिंह, बकरी, ऊँट, घोड़ा आदि की तरह मुख वाले तथा पूंछ, सींग, एक पैर वाले होते है वहाँ

Scanned with CamScanner

कल्पवृक्ष नहीं होते, वे वहाँ की स्वादिष्ट मिट्टी का भोजन करते है।

लेकिन नरक नहीं जाते है। इस प्रकार उक्त परिणामों से जो दान देता है उसे स्वर्ग, भोगभूमि और कुभोग भूमि की प्राप्ति होती है।

आगे आचार्य महाराज कहते है

चत्वारि यान्यभयभेषजभुक्तिशास्त्रदानानि तानि कथितानि महाफलानि ।
नान्यानि गोकनकभूमि रथाङ्गनादिदानानि निश्चितमवद्यकराणि यस्मात् ॥५०॥

अर्थ - अभयदान, औषध दान, आहार दान और शास्त्र दान ये चारों दान महान फल को देने वाले हैं। इनसे भिन्न गाय,सुवर्ण, पृथिवी, रथ और स्त्री आदि के दान महान फल को देने वाले नहीं हैं, क्योंकि वे निश्चय से पापोत्पादक हैं।

हे धर्म पिपासु ! आचार्य महाराज कहना चाहते है कि दान चार प्रकार के होते है। पर्यूषण पर्व में उत्तम त्याग धर्म के अर्घ में पढ़ते है।

दान चार प्रकार चार संघ को दीजिये।

यदि मनुष्य भव का लाभ लेना है तो ४ प्रकार का दान ४ प्रकार के संघों को देकर ले लेना चाहिए ।

(१) अभय दान – जिसमें प्राणियों की रक्षा के या कष्टों को दूर करने के भाव होते है। राजकुमार नेमीनाथ की बारात जब जूनागढ़ पहुँची उस समय उनकी दृष्टि कटघरे में बंधे पशुओं पर पड़ी जहाँ से करुण आवाज आ रही थी उस आवाज को सुन नेमीकुमार कर सारथी से बोले-हे सारथी ! यह देखो बेड़े के अंदर पशु बंधे हुये है। सारथी-हाँ, महाराज जानवर बंधे है रो रहे है, करुण आवाज आ रही है। महाराज जीवन की लीला ही ऐसी है सभी को प्राण प्रिय होते है अत: मरने में सभी को कष्ट होता है इन सभी जीवों को मारा जाना है। नेमिनाथ-क्या कहाँ सारथी ? सारथी-हाँ, महाराज ये मारे जायेंगे। नेमीकुमार- क्यों ? आपकी बारात में जो मांसाहारी लोग है उनके भोजन के लिये ऐसी व्यवस्था बनाई गई है। नेमिनाथ-अहो ! धिक्कार हो ऐसी शादी को कि जिसमें जीवों की हिंसा होगी, मुझे नहीं करना ऐसी शादी। सारथी रथ रोको और नेमीकुमार रथ से नीचे उतर गये। तभी लौकांतिक देव आकर उनके वैराग्य की प्रशंसा करने लगे और नेमीकुमार देवों द्वारा लायी गई पालकी पर आरुढ़ होकर सेसा वन की ओर चले गये और दीक्षा ले ली। यह था नेमीकुमार का अभयदान। बंधुओ ! यदि तुम दूसरों की रक्षा करोंगे तो वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। किसी कवि ने कहा भी है -

कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है ।
छोड़ दे हिंसा हृदय से, जीव सबका एक है ॥

क्योंकि भलाई का परिणाम बुरा नहीं होता। लोग कहते है हमने अच्छा किया और हमें उसका परिणाम बुरा मिला। तो यह भ्रम है भ्रांति है यदि आपने अच्छा किया है तो आज नहीं तो कल उसका परिणाम अच्छा होगा। इसलिये ऐसी पवित्र भावना रखते हुये सदैव जीव रक्षा करनी चाहिये।

(२) औषध दान-एक बार एक सज्जन मेरे पास आये और बोले- आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है आपने औषध नहीं

ली। दूसरे आये उन्होंने भी कहा-आपको आहार में अमुक-२ सामग्री लेना चाहिए। मैंने कहा-क्या मैं हाथ से औषध ले सकता हूँ ? बोले-नहीं। तो औषधदान अपने हाथ से स्वयं दिया जाता है। लेकिन कब देना चाहिये ? तो जब बीमार हो तब देना चाहिये। एक बार हम महाराष्ट्र में थे एक सज्जन त्याग के दिन घी, बूरा लेकर आ गये। पूछा-क्या है ? बोले-औषधी है। आपने कहा था औषधी दान देना चाहिए, इसलिये मैं औषधी लाया हूँ। साथ ही बाजार की अशुद्ध औषधी भी नहीं दी जाती औषधी शुद्ध होना चाहिये और जितनी योग्य हो उतनी ही देना चाहिये।

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा-अपने राज्य में वैद्य कितने है, पता लगाओ ? बीरबल बोले-महाराज, वैद्य गली-२ में है। और जितने रोगी नहीं उतने वैद्य है। अर्थात् वैद्य अधिक रोगी कम है। अकबर ने कहा-समझ में नहीं आया। बीरबल ने कहा-८ दिन लगेंगे समझने में और आपको ८ दिन की छुट्टी ले विश्राम लेना होगा। तभी चारों तरफ खबर फैल गई कि राजा बीमार हो गये। यह आर्य संस्कृति है कि किसी इष्ट व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब होता है तो लोग पूछते है। अब राजा के पास जितने लोग आये सभी ने पूछा-आपको क्या तकलीफ है, बुखार आ रहा है, पेट दर्द कर रहा है, सिर दर्द है आदि-२, इसप्रकार किसी ने कुछ कहा,- किसी ने कुछ कहा.........। और सभी ने अपनी-२ दवाई बताई। राजा के बगल में एक व्यक्ति बैठा था जो सभी के द्वारा बताई गई दवाई को लिखता जा रहा था और शाम तक दवाई की लम्बी लिस्ट बन गई। बीरबल ने कहा-महाराज, देख लीजिये इस रजिस्टर को जिससे पता लग जायेगा कि आप अकेले बीमार है और दवाई बताने वाले वैद्य अनेक है।

बंधुओ ! औषधी एक साथ अनेक नहीं एक चले वह भी कम से कम तीन दिन तक लगातार जिससे पता चल सकता है कि किस औषधी से आराम है अन्यथा पता नहीं चल सकता। और औषधी, औषधी है भोजन नहीं। आज के समय में औषधी नास्ता बन गया है प्रातः होते ही औषधी प्रारंभ हो जाती है। इसलिये ऐसा काम करो कि बीमार ही न हो। कंदाचित् बीमार हो जाये तो वैद्य को अलग बैठाकर चर्चा करें रोगी के सामने रोग की चर्चा न करें। क्योंकि कच्चे हृदय वाले रोग सुनकर घबरा जायेगें।

वैद्य भी रोगी को साहस दिलाने वाला होना चाहिये कि एक खुराक में रोग छूमंतर हो जायेगा, रोग बड़ा नहीं है। हाँ, यदि वैद्य पैसे कमाने वाला होगा तो छोटे रोग को भी बड़ा बतायेगा। इसलिये कभी सेवा करने का अवसर मिले तो उनकी जांच-पड़ताल कराये और आयुर्वेदिक औषधि का ही प्रयोग करे। साथ ही साधुओं का बहुत सारी सामग्री का त्याग होता है इसलिये साधुओं के पूछने पर उन्हें औषधी के विषय में सही जानकारी दे।

(३) आहार दान-सत्पात्रों को अपनी शक्ति के अनुसार शुद्ध, प्रासुक, मर्यादित तथा समय पर आहार देना चाहिये।

(४) शास्त्र दान (ज्ञान दान) - श्रावक का धर्म है शास्त्र देना और हमारा धर्म है शास्त्र लेना। लेकिन कितना लेना कितना नहीं ये हमारे ज्ञान का विषय है। जब हमारा एक शास्त्र पूरा हो जायेगा, तब दूसरा लेगे, पिटारे नहीं बनायेगे। क्योंकि कुछ लोग रखते जाते, रखते जाते और इतने बड़े-२ बेग बना लेते है कि उठते नहीं है फिर उन्हें लोग पटकते है उन पर बैठते है पैर रखते है। इसलिये जितना पढ़े उतना ही ले, शेष को मंदिर में रखें।

Scanned with CamScanner

बंधुओ ! शास्त्रों में लिपिबद्ध है कि जो आहार दान देता है वह कभी भूखा नहीं रहता, उसे भोजन के लिये नहीं तरसना पड़ता है। औषधी दान देने वाला रोगी नहीं होता, कदाचित् बीमार हो भी जाये तो थोड़ी सी औषधी में ही ठीक हो जाता है। ज्ञान दान देने से ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है मानो सरस्वती ही कण्ठ में विराजमान हो। अभय दान देने से अपने आप सुरक्षा-व्यवस्था मिलती है, विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता है। लेकिन जो इन चार दानों को छोड़कर स्वर्ण, भूमि, ग्राम, स्त्री आदि का दान जो निषिद्ध है जिससे पाप की उत्पत्ति होती है करता है वह नियम से पाप का अर्जन करता है। इसलिये इन दानों का त्याग करके सत्पात्रों को ही दान देना चाहिए।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

दिनांक-२६-११-०९

स्थान-तलोद (गुज.)

दिन-गुरुवार

प्रव. १६/ श्लोक ५१-५३

दान की शिक्षा धार्मिक संस्कृति की रक्षा

◆ जिसने जिनालय, धर्मशाला आदि के उद्देश्यों को लेकर जमीन का दान दिया है, जिसने भगवान की पूजा, छत्र, चमर आदि के लिये स्वर्ण का दान दिया है, जिसने अभिषेक आदि के लिये गाय तथा पूजा-अर्चना के काम आने वाली द्रव्य के लिये खेतों का दान दिया है। ऐसे लोगों ने दान ही नही किया अपितु संस्कृति की रक्षा की है।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज ने पूर्व गाथा में बताया था कि सत्पात्रों को दिया गया दान ही चार प्रकार का होता है बाकि के अन्य सभी लोगों के लिये जो कुछ दिया जाता है वह सब करुणा दान है। चाहे कोई हास्पिटल खुलवाये, औषधि दे, स्कूल खुलवाये, स्कूल में पुस्तक दे, आम जनता के लिये भोजन कराये या प्राणी मात्र की रक्षा करें उसे सम्यक् दान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि दान का सीधा संबंध सत्पात्र से है अर्थात् जो रत्नत्रय से सम्पन्न है, जिनसे धर्म की प्राप्ति होती है ऐसे महापुरुष के लिये जो दान दिया जाता है वह सम्यक्दान है वही सम्यक्दान आहार, औषधी, शास्त्र व अभय दान के भेद से चार प्रकार का है। शास्त्रों में गो दान, स्वर्ण दान, कन्या दान, रत्न दान, पृथ्वी दान आदि को स्वीकार नहीं किया गया है। यह एक वैदिक संस्कृति है। लेकिन जैन संस्कृति में भी भूमि दान की बात, मंदिर निर्माण तथा धर्म के स्थानों के निर्माण के लिये, संत निवास के निर्माण की बात कही गई है। इसी प्रकार स्वर्ण दान के द्वारा मंदिर में पूजन करने के लिये अथवा भगवान के लिये छत्र, चमर, रथ तथा सिंहासन इत्यादि का निर्माण तथा गो दान जिसके दूध से भगवान का अभिषेक किया जाता था इस प्रकार प्राचीन समय में ऐसा दान दिया जाता था। इसी बात को आचार्य महाराज पुनः कहते है-

यद्दीयते जिनगृहाय धरादि किंचित् तत्तत्र संस्कृति निमित्तमिह प्ररुढम् ।
आस्ते ततस्तदतिदीर्घतरं हि कालंजैनं च शासनमतः कृतमस्ति दातुः ॥५१॥

अर्थ - जिनालय के निमित्त जो कुछ पृथिवी आदि का दान किया जाता है वह यहाँ धार्मिक संस्कृति का कारण होकर अंकुरित होता हुआ अतिशय दीर्घकाल तक रहता है। इसलिये उस दाता के द्वारा जैनशासन ही किया गया है।

बंधुओ ! **जिसने जिनालय, धर्मशाला आदि के उद्देश्यों को लेकर जमीन का दान दिया है, जिसने भगवान की पूजा, छत्र, चमर आदि के लिये स्वर्ण का दान दिया है, जिसने अभिषेक आदि के लिये गाय तथा पूजा-अर्चना के काम आने वाली द्रव्य के लिये खेतों का दान दिया है। ऐसे लोगों ने दान ही नहीं किया अपितु संस्कृति की रक्षा की है।** उससे संस्कृति सुरक्षित ही नहीं फलीभूत भी हुई है जिसमें कभी दूसरों की अपेक्षा नहीं की गई। इसलिये पुराने लोग केवल मंदिर का निर्माण तथा मूर्ति की प्रतिष्ठा ही नहीं कराते थे इसके साथ इन सब बातों का ध्यान भी रखते थे।

बंधुओ ! आज बहुत सारे लोग मंदिर एवं मूर्ति का निर्माण तो कराते है लेकिन उसका संचालन कैसे हो इसके विषय में नहीं सोचते है ? शास्त्रों में मूर्ति निर्माण की महिमा गाई गयी कि जो चने के बराबर मंदिर बनाकर उसमें राई के बराबर मूर्ति रखे वह निकट भव्य है, तीर्थंकर जैसे पद को प्राप्त कर लेता है इसलिये मूर्ति निर्माण की होड़

Scanned with CamScanner

लगी लेकिन मंदिर व मूर्ति निर्माण की अपेक्षा महत्वपूर्ण है उसकी पूजा-अर्चना। और जिसने पूजा-अर्चना नहीं की उसके लिये मूर्ति स्थापित करने का कोई फल नहीं मिलता। क्योंकि मूर्ति स्थापित करने का अर्थ है कि आप भी पूजा-अर्चना कीजिए साथ ही इस बात का भी ध्यान रखिये कि आगे कैसी पीढ़ी आयेगी उसकी व्यवस्था कीजिये। आज भी मंदिरों में पूजन फण्ड की व्यवस्था की जाती है जिसके माध्यम से पूजन आदि की व्यवस्था आगे यथावत् चलती रहे।

म.प्र. के क्षेत्र खजुराहो में जो एक पर्यटक स्थल है वहाँ का पार्श्वनाथ मंदिर जिसे एक पाहुल श्रेष्ठी ने बनवाया था जिसके विषय में किंवदंति है कि कारीगर ने पत्थर के लिये मोम बना दिया इतनी बारीक कलाकारी की। और उस मंदिर की प्रशस्ति में लिखा है कि जो व्यक्ति इस मंदिर की पूजा-अर्चना, रक्षा करेगा उसका मैं दासानुदास हूँ।

इन्दौर में सरसेठ हुकुमचंद हुए जिन्होंने जैन मंदिर का निर्माण करवाया और उसमें बहुत कुछ अपने धन का व्यय किया लेकिन सीढ़ियों का स्थान छोड़ दिया और कहा-बस इतनी ही हमारी बनाने की गुंजाइश थी सीढ़ियाँ हम नहीं बना सकते है इसके लिए चंदा होना चाहिए। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सेठ जी ने इतना बड़ा काम किया और ४-५ सीढो बनाने के लिये चंदा की बात कर रहे है। पंचायत बुलाई गई, सारी समाज को बुलाया गया और उन्होंने अपनी बात कही कि- मेरे पास अब इतनी क्षमता नहीं है कि सीढ़ियों को बना सके इसलिये सारी समाज का चंदा चाहिए अत: सभी लोग अपनी-२ शक्ति के अनुसार चंदा दे। किसी ने कहा-इसके लिये तो एक ही व्यक्ति तैयार हो जायेंगे। सेठ जी ने कहा-नहीं, मुझे एक व्यक्ति का नहीं चाहिये, समाज के हर सदस्य का चंदा चाहिये और उतना ही चाहिए जिससे सीढ़ियाँ बन जाए। जब सीढ़ी बन गई तब एक व्यक्ति ने पूछा-सेठजी आपने ऐसा क्यों किया ? सेठजी बोले-इसके पीछे-दो सिद्धांत / रहस्य है। पहला सिद्धांत है कि कल के दिन मेरे अंदर अंहकार न आ जाये कि मैं ही मंदिर का निर्माता हूँ। इसमें सभी का चंदा होने से सभी यही कहेंगे कि इसमें तो मेरा भी है, मैंने भी योगदान दिया है। दूसरा सिद्धांत है कि जब सबने योगदान दिया है तो सबकी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है। कल के दिन कोई यह नहीं कहेगा कि सेठ जी ही पूजन-प्रक्षालन एवं सुरक्षा-व्यवस्था करते रहे। सेठजी की उम्र सीमित है सेठ जी के जाने के बाद मंदिर की सुरक्षा के विषय में समाज अपना दायित्व निभाये। क्योंकि इसमें सभी का योगदान है। इसलिये मैंने चंदा लिया है। तात्पर्य यह है कि खाली मंदिर-मूर्ति बनाना ही पर्याप्त नहीं है उसके साथ-२ संस्कृति की रक्षा कैसे हो ऐसा विचार करने वाले व्यक्ति ही उस संस्कृति की रक्षा करते है और उसका संस्कृति की रक्षा हेतु दिया गया दान भी श्रेष्ठ है। इसी बात को पुन: आचार्य महाराज कह रहे है।

दान प्रकाशनमशोभनकर्मकार्य कार्पण्डपूर्णहृदयाय न रोचतेऽद: ॥
दोषोज्झितं सकललोकसुखप्रदायि तेजो रवेरिव सदा हतकौशिकाय ॥५२॥

अर्थ - जो निर्दोष दान का प्रकाश समस्त लोगों को सुख देने वाला है वह पापकर्म की कार्य भूत कृपणता(कंजूसी) से परिपूर्ण हृदय वाले प्राणी (कंजूस मनुष्य) के लिये कभी नहीं रुचता है। जिस प्रकार कि दोषा अर्थात् रात्रि के संसर्ग से रहित होकर सम्पूर्ण प्राणियों को सुख देने वाला सूर्य का तेज निन्दनीय उल्लू के लिये रुचिकर प्रतीत नहीं होता।

बंधुओ ! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे है कि दान की बात सभी को अच्छी नहीं लगती है। और यदि दान

Scanned with CamScanner

का नम्बर आ जाये तो कुछ लोग सभा में पीछे बैठ जाते है या मीटिंग में आने से पहले ही मनाकर देते है कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है मैं नहीं आ पाऊँगा। और यदि कोई घर में आ जाए तो पहले से ही दरवाजा बंद कर लेते है या लोगों को पहले से ही समझा कर रखते है कि कोई आये तो बोल देना बाहर गये है। लेकिन ऐसा वही कर सकता है जिसका हृदय कृपण रहता है अर्थात् जिसका कंजूस भाव रहता है उसको दान देने में परेशानी होती है। वह हर तरीके से बचाने का प्रयास करता है। एक बार एक ब्राह्मण पुत्र था जिसके पिता की छोटी उम्र में ही मृत्यु हो गई थी वह जैसे-तैसे संस्कृत पढ़ने के लिये बनारस गया और पढ़ाई प्रारंभ की लेकिन एक दिन अचानक समाचार आ गया कि तुम्हारी माँ बहुत बीमार है। पुत्र कंजूस था। वह सोचने लगा मैं यहाँ तो पूजा पाठ करके पढ़ाई कर रहा हूँ अब यदि माँ को देखने घर जाऊँगा तो किराये के लिये पैसा चाहिए। फिर एक दिन समाचार मिला कि आपकी माँ जिन्होंने आपका पालन-पोषण किया है, उनका देहान्त हो गया है। ब्राह्मण सोचता है कि अगर जायेंगे तो पैसा खर्च होगा, यही से श्रीफल चढ़ा देते हैं। यही हमारा कर्तव्य है अब वो जिन्दा तो हैं नहीं, जिंदा होती तो कोई बात थी, और वह बाजार जाता है श्रीफल खरीदने के लिये। जैसे ही वह दुकानदार से श्रीफल का दाम पूछता है तो दुकानदार कहता है-सात रुपये का। दाम सुनते है ब्राह्मण के छक्के छूट जाते हैं। वह सोचता है इतने रुपये में तो हम पाँच दिन तक खायेंगे। वह दुकानदार से कहता है- इससे छोटा नारियल हो तो बतायें। वह दुकानदार छोटा नारियल दिखाता है और पाँच रुपये का दाम बताता है। ब्राह्मण कहता है- चार रुपये में दोंगे। दुकानदार कहता है- आपको गोदाम पर जाना पड़ेगा, वहाँ चार रुपये में श्रीफल मिल जायेगा। ब्राह्मण गोदाम जाता है और गोदाम वाला उसे चार रुपये में देने को तैयार हो जाता है, लेकिन वह कहता है-आप दो रुपये में दोंगे। गोदाम वाला कहता- दो रुपये में तो आपको बगीचा में मिलेगा। वह ब्राह्मण बगीचे में जाता है और उसे बागवान दो रुपये में देने को तैयार हो जाता है वह ब्राह्मण बागवान से कहता है एक रुपये में दोगे। बागवान कहता है- एक रुपये में तो आपको वृक्ष के पास इकट्ठे करने वाले व्यक्ति से मिल जायेगा क्योंकि वह गिर चुके हैं, वह अंदर जाता है और नारियल इकट्ठे करने वाले व्यक्ति से पूछता है-यह नारियल कितने का ? वह कहता है एक रुपये का। फिर ब्राह्मण बोला फ्री में नहीं दोंगे। नौकर ने कहा-दे सकता हूँ, लेकिन पेड़ पर चढ़ जाओ और जो भी चाहिये हो उसे ले लेना।

बंधुओ ! वह ब्राह्मण निरन्तर एक ही विचार में था कि कैसे एक रुपया बच जाये ? अब ब्राह्मण चारों ओर दृष्टि दौड़ाता है कि बड़ा श्रीफल कौन सा है ? और उस श्रीफल वाले वृक्ष पर चढ़ जाता है। सोचता है माँ का आशीर्वाद है कि फ्री में ही श्रीफल मिल गया है और वृक्ष पर लगे नारियलों में से बड़े से बड़ा श्रीफल छाटने लगा और उस श्रीफल को हाथ से तोड़ा, तो टूटा नहीं तो वह दोनों हाथों से उस नारियल को तोड़ने लगा जिससे उसका पैर वृक्ष से छूट गया। अब वह भगवान का नाम स्मरण करने लगा-हे भगवान ! दया करो, बच गया तो सम्पत्ति को मंदिर बनवाने में लगा दूँगा। चाहे मुझे मंदिर बनाने में भीख मांगना पड़े तो भी माँग लूँगा। वह विचार ही कर रहा था कि संकल्प पक्का है भगवान जीवन बच जायेगा तो मंदिर जरूर बनवाऊँगा और भगवान ने सुन लिया कि वहाँ से एक हाथी वाला निकला और वह ब्राह्मण चिल्लाता है, ऐ ! हाथी वाले अपना हाथी यहाँ ले आओ। वह भी चतुर था बोला-तुम मुझे क्या दोगे ? ब्राह्मण बोला- मैंने सम्पत्ति तो भगवान को दे दी, लेकिन मेरे शरीर पर जो आभूषण हैं, उसको मैं तुमको दे दूँगा, अभी वह हाथी के ऊपर पैर भी नहीं रख पाया था मात्र महावत ने उसके पैर ही पकड़े कि हाथी वहाँ से चला गया। अभी तक वह अकेला था, लेकिन अब महावत भी साथ में लटक गया। ब्राह्मण फिर

Scanned with CamScanner

भी सोच रहा है कि रक्षा हो जाये, इतने में वहाँ से ऊँट वाला निकलता है। दोनों उसे आवाज लगाते है। वह भी उसका भाई था। वह भी बोला-क्या दोगे ? उसने कहा-मैं तुम्हें हाथी दूँगा और वह ऊँटवाला उतारने के लिये जैसे ही तैयार हुआ और उसने महावत के पैर पकड़े कि ऊँट भी वहाँ से खिसक गया। इस प्रकार अब तीनों वहाँ लटक गये। तभी एक हवा का झोंका आया और नारियल टूट गया जिससे तीनों नीचे गिरकर मर गये। तात्पर्य यह है कि लोभ के कारण उन लोगों को जीवन से भी हाथ धोना पड़ा।

इसी प्रकार परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज भी एक घटना सुनाते थे और मुझे गुरुदेव आचार्य विमल सागर जी ने सुनाई थी कि आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज के भक्त एक ऐसे सेठ जी थे जिसने महाराज से कहा-कि बड़े भाग्य से मुझे आपके दर्शन मिले, मन गद्‌गद् हो गया, मुझे सेवा का कोई अवसर दीजिए। महाराज ने कहा-सेवा का अवसर सम्मेद शिखर की यात्रा कराओ। उसने कहा-अवश्य, मेरी अनाज की दुकान है मेरी गोदाम में जो अनाज रखा है यदि वह बिक गया और बिकने के उपरांत इतना पैसा आ जाये कि यात्रा करा सकूँ तो आपकी यात्रा पक्की। महाराज ने कहा-तथास्तु, जाओ इतना पैसा आयेगा कि तुम आराम से यात्रा करा सकोगे और इतना ही नहीं इससे भी दूना आ जायेगा। उसने कहा-मैंने वचन दिया और यह श्रीफल रखा। सेठजी वापिस आ गये, परिणाम यह निकला कि मण्डी का भाव बढ़ गया और उसे दुगुना पैसा प्राप्त हो गया। अब उसने अपनी पत्नि से कहा-मैंने महाराज को ऐसा- ऐसा वचन दिया है। पत्नि धार्मिक थी उस ने कहा-आपने महाराज से कहा था कि मैं आपकी यात्रा कराऊँगा तो यात्रा कराओ। चलो कब से शुरु करना है। सेठजी-अभी थोड़ा ओर रुको। अभी इस पैसे से और सामग्री खरीदेंगे क्योंकि भाव बढ़ते जा रहे है जिससे आगे अच्छा लाभ मिलेगा। सेठानी ने कहा-देखो, ऐसा मत करो। लेकिन सेठ जी नहीं माने और उन्होंने दूसरा व्यापार शुरु कर दिया। महाराज जी का सेठजी को -दो बार समाचार आया लेकिन सेठजी बोले-महाराज एक महीने के बाद, १५ दिन बाद, अभी बाजार भाव अच्छा चल रहा है और अब तो आपकी यात्रा मैं धूम धाम से कराऊगा, कोई कमी नहीं आने दूँगा। परिणाम यह निकला कि वह एक समय सीमा तक बढ़ता गया और अंत में सेठजी भूल गये। और एक दिन अचानक सेठजी का स्वास्थ्य खराब हो गया और इतना खराब हुआ कि पैसा जैसा आया था पूरा का पूरा वैसा ही चला गया। अब सेठ जी घबरा गये। सेठानी ने कहा-आपने महाराज को वचन दिया था यात्रा कराने का, अब चाहे घर बेचना पड़े, चाहे कुछ भी करना पड़े आप चलो पहले महाराज की यात्रा कराओ। सेठानी, सेठ जी को महाराज के पास लायी और सेठ जी ने महाराज से क्षमायाचना की पश्चात् महाराज के संघ की यात्रा कराई। और जैसे ही यात्रा शुरु हुई सेठजी को पुनः लाभ मिल गया और संघ की यात्रा फ्री में हो गई। लेकिन जो सत्पात्रों को दान देते है उनके लिये ही ऐसा लाभ प्राप्त होता है। इसके विपरीत कंजूस हृदय वाले व्यक्ति को दान और दान की बात कभी रुचती नहीं है। जैसे रात्रि के संसर्ग से रहित होकर सम्पूर्ण प्राणियों को सुख देने वाला तेज (प्रकाश) उल्लू के लिये नहीं रुचता है। क्योंकि दिन में उल्लू को दिखता नहीं है इसलिए सूर्य का प्रकाश उल्लू को रुचता नहीं है। तात्पर्य यह है कि हम निरन्तर दान करने के परिणाम बनाये।

Scanned with CamScanner

आगे पूज्य आचार्य महाराज लिखते है-

दानोपदेशनमिदं कुरुते प्रमोदमासन्नभव्यपुरुषस्य न चेतरस्य ।
जातिः समुल्लसति दारु न भृङ्गसंगादिन्दीवरं हसति चन्द्रकरैर्न चाश्मा ।।५३।।

अर्थ - यह दान का उपदेश आसन्न भव्य पुरुष के लिये आनंद को करने वाला है न कि अन्य (दूर भव्य और अभव्य) पुरुष के लिये। ठीक है भ्रमरों के संसर्ग से मालती पुरुष शोभा को प्राप्त होता है, किन्तु उसके संसर्ग से काष्ठ शोभा को नहीं प्राप्त होता। इसी प्रकार चंद्रकिरणों के द्वारा श्वेत कमल प्रफुल्लित होता है, किन्तु पत्थर नहीं प्रफुल्लित होता।

बंधुओ ! जो आसन्न भव्य है, उदार हृदय वाले है उनके लिये दान की बातें आनंद को उत्पन्न करने वाली होती है। जैसे धर्मात्मा को धर्म की, त्यागी को त्याग की बात आनंद दायक होती है। जबकि इसके विपरीत प्राणियों के लिये वह आनंद दायक नहीं होती है। जैसे मालती पुष्प पर जब भ्रमर बैठता है तो उसकी शोभा बढ़ जाती है किन्तु दारु यानि लकड़ी शोभा को प्राप्त नहीं होती है। इसी प्रकार चंद्र किरणों के द्वारा श्वेत कमल प्रफुल्लित होता है। (कुमुदिनी का दूसरा नाम श्वेत कमल है) जबकि पत्थर प्रफुल्लित नहीं होता है। ठीक इसी प्रकार से कंजूस व्यक्ति के पास धन शोभा को प्राप्त नहीं होता और वह दान की बातों से कभी प्रफुल्लित नहीं हो पाता है।

तात्पर्य यह है कि हे भव्य ! कभी भी दान के कार्यों में पीछे नहीं रहना चाहिये। आप दान कर सके बहुत अच्छा, नहीं कर सके तो कम से कम दान देता देख कर आनंदित हो जाये। क्योंकि कंजूस के अच्छे भाव नहीं होते है।

एक बार अकबर की सभा लगी हुई थी जिसमें बीरबल बैठे थे। चर्चा प्रारंभ हुई और अकबर ने बीरबल से कहा-हे बीरबल, तुम अपने हाथ देखो तुम्हारे हाथ में बाल नहीं है। बीरबल ने कहा-किसी के भी हाथ में बाल नहीं है। अकबर ने कहा-इसका रहस्य क्या है कि हमारे हाथ में बाल नहीं है ? बीरबल ने कहा-पहले सभा में आये हुये सभी सभासदों से समाधान ले लिया जाये और इसके बाद मैं समाधान दूँ तो उचित रहेगा। अन्यथा सभी कहेंगे जब आपको समाधान बीरबल से ही लेना था तो हम लोगों को क्यों बुलाया ? सभा में बड़े-२ विद्वान-पण्डित आये थे। अकबर ने सभी से पूछा लेकिन किसी ने कुछ उत्तर दिया, किसी ने कुछ उत्तर दिया अंत में जाकर बीरबल से प्रश्न पूछा गया। बीरबल ने कहा - जहाँपनाह, आप इतने दानपति है इतना दान देते है कि दान देते-२ आपके हाथ के बाल झड़ गये। अकबर बोले-अगर ऐसी बात है तो सभी तो दान नहीं देते। बीरबल ने कहा-जितने लोग दान देते है उन सबके दान देते-२ सारे बाल झड़ गये लेकिन जो दान नहीं देते है मात्र दान लेते है उनके भी दान लेते-२ बाल झड़ गये। अकबर ने कहा-सभी तो दान नहीं लेते है फिर उनकी हथेली में बाल क्यों नहीं है ? बीरबल ने कहा-महाराज, वे दान देने वाले और लेने वाले को देखकर हाथ मलते रहते है इसलिये उनकी हथेली के बाल झड़ गये।

बंधुओ ! कही हम भी हाथ मलते ही न रह जाये इसलिए अच्छा है कि पुण्य के उदय से जो हमको मिला है उसका सदुपयोग पुण्य कार्यों में करें। क्योंकि गृहस्थिक जीवन की विशेषता होती है कि वह अपनी कमाई का ६वाँ भाग दान करें। यदि ६ वाँ भाग दान न कर सके तो ८वाँ भाग दान करें और यदि ८वाँ भाग दान न कर सके तो १०वाँ भाग दान जरुर करना चाहिए। वास्तविकता में निश्चय नय से देखा जाये तो दान करना कोई महत्वपूर्ण

Scanned with CamScanner

धर्म नहीं है, लेना-देना हमारी आत्मा का स्वभाव नहीं है, क्योंकि पर पदार्थों को न लिया जा सकता है और न दिया जा सकता है। आत्म स्वरुप में यदि हम लीन हो जाये तो लेन-देन की सारी पद्धति समाप्त हो जायेगी। चूँकि हम सभी ऐसी उत्तम दशा को प्राप्त नहीं कर पाते है इसलिये आचार्य महाराज कहते है कि यदि तुम गृह त्याग कर आत्म स्वरूप में लीन नहीं हो सकते हो तो गृह में कमाया हुआ जो धन है उसको अच्छे कार्यों में उपयोग करो क्योंकि गृहस्थ जीवन में उपार्जित पापों को धोने का यही एक उत्तम तरीका है अन्य दूसरा कोई नहीं। ऐसा आचार्य समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भी कहा है।

गृहकर्मणापि निचितं, कर्म विमार्ष्टि खलु गृहाविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरं मलं धावते वारि ॥११४॥

अर्थात् गृहकार्य में उपार्जित किए गये पापकर्मों को सत्पात्रों को दिया गया चार प्रकार का दानादि उसी प्रकार धो देता है जैसे रुधिर से मलीन वस्त्र को, जल।

अतः हम अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जीवन को सफल बनाये।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान - तलोद (गुज.)
दिनांक-२७-११-०९
वार-शुक्रवार

Scanned with CamScanner

प्रव.१७/ श्लोक - ५४

महिमा - दान दाता की

◆ कीचड़ धोने की सार्थकता तो तब है जबकि पैर में पहले से कीचड़ लग गया हो तो उसको आप धो लीजिये, यह आपकी सफलता कहलायेगी। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव दान करने के लिए कमाई नहीं करता बल्कि जो कमाई की है उसको कम करने के लिए दान-पूजा आदि करता है।

बंधुओ ! भगवान महावीर स्वामी ने धर्म की देशना करते हुये धर्म के दो विभाग बनाये एक मुनिधर्म और दूसरा श्रावक धर्म। श्रावकों को क्रिया प्रधान धर्म की व्याख्या की और साधुओं को ध्यान प्रधानधर्म की व्याख्या की है। श्रावकों को क्रिया प्रधान इसलिये कहा कि वह गृहस्थ है नाना प्रकार के आरंभ-परिग्रह से सहित है वह विभिन्न प्रकार से उसका सदुपयोग कर सकता है। जो काम मुनि नहीं कर सकते वह श्रावक कर सकते है। लेकिन आचार्य कुंदकुंद महाराज ने रयणसार में श्रावक के दो प्रधान धर्म दान और पूजा को कहा है लेकिन जो श्रावक होकर अपने धर्म का पालन नहीं करता है वह देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता है और आज्ञा का पालन नहीं करने वाला सम्यग्दृष्टि नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव देव-शास्त्र-गुरु को माने और उनकी आज्ञा को न माने ऐसा नहीं हो सकता है। इसलिए आचार्यों ने कहा श्रावक के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा निरन्तर करते रहना चाहिए और इसलिए करना चाहिए कि जिस प्रभु की आपने स्थापना की है उसकी पूजन कौन करेगा ? क्योंकि भगवान की पूजा किसी पुजारी के बल पर नही की जाती है। भगवान कहते है पूजा-अभिषेक अपने हाथ से करना चाहिए। बड़े-२ महाराजा, चक्रवर्ती हुए वे सभी अपने हाथ से भगवान की अर्चना-पूजा, अभिषेक करते थे। स्वर्ग के सम्यग्दृष्टि देव भी अपने हाथ से भगवान का अभिषेक-पूजन करते है।

श्रावक का दूसरा धर्म सत्पात्रों को दान देना चाहिए। क्योंकि घर में किया गया आरम्भ-सारम्भ पाप को बढ़ाने वाला है जबकि आहार दान आदि वह गृहस्थ के पापों को दूर कराने वाला है, परिग्रह के वजन को कम करने वाला है। एक बार एक भक्त मेरे पास आया और बोला-गुरुदेव मुझे आशीर्वाद दीजिये। मैंने कहा-किसका आशीर्वाद ? उसने कहा-मुझे इस बात का आशीर्वाद दीजिये कि मैं ख़ूब धन कमाऊँ। मैंने कहा-क्यों ? उसने कहा- जिससे कुछ दान करूँ। बड़े-२ मंदिर बनवाऊँ। मैंने कहा-दान के लिए कमाना ठीक नहीं है अपितु जो संग्रह किया है उसमें से त्याग किया जाता है। आचार्य पूज्यपाद महाराज ने इष्टोपदेश में भी कहा है-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचनोति यः ।
स्व-शरीरं च पङ्केन स्नास्यामीति विलंपति ॥१६॥

कुछ लोगों की धारणा रहती है कि मुझे बड़ा-२ दान करना है इसलिये मैं बड़ी कमाई करूँ लेकिन ऐसा सोचना उसी प्रकार से है जैसे कोई कहे मुझे स्नान करना है इसलिये मैं शरीर पर कीचड़ लगा रहा हूँ यह उसकी मूर्खता कहलाऐगी। **क्योंकि कीचड़ धोने की सार्थकता तो तब है जबकि पैर में पहले से कीचड़ लग गया हो तो उसको**

Scanned with CamScanner

आप धो लीजिये, यह आपकी सफलता कहलायेगी। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव दान करने के लिए कमाई नहीं करता बल्कि जो कमाई की है उसको कम करने के लिए दान-पूजा आदि करता है। इसलिये शास्त्रों में दान की अपूर्व महिमा गायी गई है।

बंधुओ ! दान देने का अधिकार भी हर व्यक्ति को नहीं रहता है। शास्त्रों में दान देने वाले दाता को सात गुणों से सम्पन्न होना चाहिये तभी वह आहार दे सकता है जिसमें ७ गुण नहीं है वह दान देने का अधिकारी नहीं है। दाता के ७ गुणों में पहला गुण है श्रद्धा अर्थात् उसे भगवान के उपदेश पर विश्वास होना चाहिए कि भगवान का उपदेश है दान करना और दान एक धर्म है, दान देने से इहलोक और परलोक में व्यक्ति सुखी होता है। दूसरा गुण है भक्ति अर्थात् सत्पात्र के लिये आहार दान देना है तो नवधा भक्ति करना पड़ेगी। क्योंकि संत खाने के लिये नहीं, जीने के लिये खाते है और इन दोनों में काफी अंतर है क्योंकि जो जीने के लिये खाता है उसका लक्ष्य जिंदगी है भोजन नहीं लेकिन जो खाने के लिये जीता है उसका लक्ष्य खाना है जिंदगी नहीं और जिसने खाने का लक्ष्य बनाया है वह यद्वा-तद्वा कुछ भी कहीं भी खाता रहता है और फिर उसका पेट भी नहीं भर पाता है।

आचार्य कार्तिकेय महाराज हुये उन्होंने कहा-यह पेट रुपी गड्ढा ज्यादा बढ़ा नहीं मात्र एक बिलस्त का है। लेकिन वह इतना गहरा है कि तीन लोक का भोजन भी इसके अंदर डाला जाये तो भी वह नहीं भर पाता है, वह खाली का खाली ही रहता है तथा तीन लोक में ऐसा कोई पदार्थ शेष नहीं रहा जिसे आज तक इस जीव ने न खाया हो।

आचार्य पूज्यपाद महाराज भी इष्टोपदेश में कहते है

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥३०॥

अर्थात् इस जीव ने सारे पुद्गलों को अनंतबार भक्षण किया और छोड़ दिया। इसलिये वह सब उच्छिष्ट की तरह है इसलिये विज्ञ पुरुषों के लिए इसमें क्या इच्छा रखना चाहिए ? अर्थात् कुछ भी नहीं। इसलिये संत जब आहार को जाते है तो कोई इच्छा लेकर नहीं जाते है बल्कि विचार करते है ओहो, मैंने जो दुर्लभ मनुष्य पाया है वह खाने के लिये नहीं साधना के लिए पाया है, रत्नत्रय की आराधना के लिये पाया है, खाना-पीना तो अनादि काल से चलता ही रहा है जिस-२ पर्याय में जन्म लिया वहाँ-वहाँ आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा चलती ही रही है। इसलिये मेरी इच्छा आहार करने की नहीं है। संत आहार नहीं करते है उनको आहार करना पड़ता है और इसलिये करना पड़ता है कि आहार के बिना शरीर अधिक समय तक टिक नहीं सकता है। इसलिये भगवान कहते है हे संत ! आहार करो किंतु आहार में आसक्ति मत करो। राग-द्वेष मत करो बल्कि जो मिले उसे समता से ले लो। और लेने के बाद भूल जाओ कि मैंने क्या लिया है। अब यदि आप उसको याद रखोगे, चर्चा करोंगे तो विकथा कही जायेगा और विकथा प्रमाद का एक भेद है और प्रमादी व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता। इसलिये संत जीने के लिये आहार लेते है ताकि वे रत्नत्रय की आराधना कर सके। उनका मुख्य प्रयोजन रत्नत्रय होता है आहार नहीं, इसलिये वे ४६ दोष टाल कर आहार लेते है और जिनका लक्ष्य आहार होता है वे दोषों की ओर ध्यान नहीं देते

Scanned with CamScanner

है।

बंधुओ ! संत शरीर के लिए नौकर बनाकर रखते है और उसे आहार वेतन की तरह देते है। जैसे एक कर्मचारी के लिये मेहनताना दिया जाता है। इसलिये संत शरीर की इच्छा के अनुसार नहीं अपनी इच्छा के अनुसार शरीर को चलाते है। जब आप महाराज को नमोस्तु करते हो तो महाराज का हाथ ऊपर की ओर रहता है लेकिन एक समय ऐसा आता है जिस समय उनका हाथ नीचे होता है और श्रावक का हाथ ऊपर होता है। यदि उनका वश चले तो वे आहार ही न ले। भरत चक्रवर्ती मुनिराज, बाहुबली मुनिराज ने कभी आहार नहीं लिया क्योंकि आहार लेना अच्छी बात नहीं है इसलिये वे अपनी साधना में निरत रहते है। तथा संत कभी रोटी के चक्कर नहीं लगाते बल्कि रोटियाँ उनके चक्कर लगाती है इसलिये वे संत है। और जो रोटी के चक्कर लगाता है वह भिखारी की तरह है। एक बार एक श्रावक मेरे पास आया और बोला-महाराज थोड़ी देर के लिये रुक जाइये। मैंने कहा-क्यों ? बोले-हमारी मम्मी कुछ सामग्री तैयार करना चाहती है वह तैयार कर रही है इसलिये रुक जाइये। मैंने कहा-नहीं। और मैं शुद्धि करके आहार को निकल गया। फिर बोले-महाराज आप बिल्कुल नहीं रुके। मैंने कहा-साधुजन, रोटी की इंतजारी नहीं करते है रोटियाँ संत की इंतजारी करती है। इसलिये संतजन जब आहार को निकलते है तो द्वार-२ पर श्रावक तथा रोटियाँ इंतजारी करती हुई खड़ी रहती है कि कब संत घर में आए और कब घर को पवित्र करें। इसलिये संतों की नवधा भक्ति होती है जिसमें पहली भक्ति है प्रतिग्रह यानि पड़गाहन करना। हे स्वामिन् ! नमोस्तु-३, अत्र-३, तिष्ठ-३ यदि महाराज आ गये तो बड़ी प्रसन्नता से उसकी भक्ति पूर्वक नम्रता से तीन प्रदक्षिणा लगाना चाहिए तथा ध्यान रखना चाहिए कि कही कोई जीव की विराधना तो नहीं हो रही है, कही हमारा पैर किसी अशुद्ध पदार्थ पर तो नहीं पड़ रहा है। इसके उपरांत महाराज खड़े हो जाते है और श्रावक बोलता है हे स्वामिन् ! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्धि है मेरे गृह में प्रवेश कीजिए। पश्चात् वह विनय के साथ रास्ते को देख-२ कर आगे चलता है कि कही मेरा पैर पंख, गोबर, बीट, धागा, गंदा कागज-कपड़े आदि अशुद्ध सामग्री पर न पड़ जाये अन्यथा महाराज देख लेंगे तो घर से लौट जायेंगे। क्योंकि फिर जिस घर से संत लौट जते है उससे बढ़ा अभागा व्यक्ति कोई नहीं माना जाता है। इसलिये वह बड़ी गहराई से ध्यान देकर सावधानता से चलता है। घर के दरवाजे पर पहुँचकर महाराज से प्रार्थना करता है हे स्वामिन् ! भोजनगृह में प्रवेश कीजिये। और पैर को आगे पीछे पानी डालकर धोता है। चौके में पहुँचने पर उच्चासन देना यह दूसरी भक्ति है। इसमें भी श्रावक ध्यान रखता है कि पाटे के नीचे कोई जीव-जन्तु तो नहीं है। पश्चात् शुद्ध प्रासुक जल से मुनिराज के चरणों का पाद प्रक्षालन करना यह तीसरी भक्ति है। लेकिन मुनिराज तथा आर्यिकाओं का चरणोदक सिर पर लगाकर शेष चरणोदक को ऐसे स्थान पर डालना चाहिये जहाँ किसी का पैर न पड़े। तदुपरांत चौथी भक्ति अष्टद्रव्य से पूजन करना चाहिये। लेकिन द्रव्य में भी कोई जीव वगैरह न हो इसका ध्यान रखना चाहिए। पूजन के उपरांत विनय के साथ उन्हें नमस्कार करना यह पाँचवी भक्ति है। छठवीं भक्ति मन शुद्धि अर्थात् मन में किसी प्रकार का विकार नहीं है मन प्रसन्न है, पवित्र है। सातवीं भक्ति वचन शुद्धि है अर्थात् जो बोलेंगे सत्य बोलेगे, अच्छे शब्दों का प्रयोग करेंगे और आठवीं शुद्धि काय शुद्धि है यानि शरीर शुद्ध है, वस्त्र भी शुद्ध है अर्थात् मैं स्नान करके आया हूँ, मैंने पूरे पैर धो लिये है, मुख झूठा नहीं है,

Scanned with CamScanner

हाथ को चौके के शुद्ध जल से पूरा धो लिया है। वस्त्र शुद्धि में जिन वस्त्रों को आहार के समय पहना है वे आर्य सभ्यता के अनुकूल हो क्योंकि अन्य ड्रेस पेंट शर्ट या सूट में आहार नहीं दे सकते है।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने उमास्वामी श्रावकचार में लिखा है कि जो फटे वस्त्र से आहार देता है उसका पुण्य भी उसी प्रकार क्षीण हो जाता है जैसे फटे वस्त्र में रखा अन्न गिर जाता है, यह दरिद्रता का प्रतीक माना जाता है। इसलिये वस्त्र कटा-फटा नहीं होना चाहिये। अत्यन्त मैला भी नहीं होना चाहिये, किसी से छुआ भी नहीं होना चाहिए तथा छू जाने पर अंदर एवं बाहर के सभी वस्त्र चेंज होना चाहिए। अब अंतिम एवं नौवीं भक्ति है आहार जल शुद्ध है अर्थात् जो सामग्री तैयार की गई है वह पूर्णरुपेण शुद्ध है। इस प्रकार यह नवधा भक्ति है और इस नवधा भक्ति पूर्वक ही सत्पात्र आहार ग्रहण करते है।

दाता का तीसरा गुण है तुष्टि। जिसका तात्पर्य है संतोष धारण करना। हो सकता है आपके बगल वाले चौके में ४-५ साधु आये हो और आपके चौके में एक ही साधु आये हो या एक भी न आये हो अथवा कोई आर्यिका या क्षुल्लक, क्षुल्लिका ही आये हो तो परिणाम में मलिनता नहीं आना बल्कि जो आये उसमें ही संतोष रखना, यह दाता का तीसरा गुण है। चौथा गुण विज्ञान है जिसे शास्त्रों में सभी गुणों का प्रधान गुण माना गया है। जिसका अर्थ है साधु की प्रकृति के अनुकूल आहार कराना तथा आहार के क्रम को भी ध्यान रखना कि किसके बाद क्या चलाना चाहिये ! पाँचवा गुण है अलुब्धता यानि आहार के समय लोभ नहीं करना। तात्पर्य उनके स्वास्थ्य एवं आहार के प्रमाण को ध्यान में रखते हुये आहार देना ताकि उनका स्वास्थ्य न बिगड़ जाये। छठवाँ गुण है सत्त्व यानि आहार के समय सात्त्विक विचार रखना और अंतिम गुण है क्षमा। जिसका अर्थ है अक्रोश आदि किसी प्रकार की परिस्थिति के आ जाने पर भी क्रोध नहीं करना। इस प्रकार ये दाता के ७ गुण है और जो इन ७ गुणों से सम्पन्न होता है वही दाता प्रशंसनीय होता है। इसी बात को पूज्य आचार्य महाराज लिखते है

रत्नत्रयाभरणवीरमुनिन्द्रपादपद्मद्वयस्मरणसंजनित प्रभावः ।
श्री पद्मनन्दिमुनिराश्रितयुम दानपञ्चाशतं ललितवर्णचयं चकार ॥५४॥

अर्थ- रत्नत्रय रुप आभरण से विभूषित श्री वीरनन्दी मुनिराज के उभय चरण कमलों के स्मरण से उत्पन्न हुए प्रभाव को धारण करने वाले श्री पद्मनंदि मुनि ने ललित वर्णो के समूह से संयुक्त इस दो अधिक दान पंचाशत् अर्थात् बावन पद्यों वाले दान प्रकरण को किया है।

बंधुओ ! महापुरुषों की एक परम्परा रही है कि उन्होंने सदैव-२ अपने उपकारियों के उपकार का स्मरण किया और उसमें भी परमोपकारी गुरुओं के उपकार को स्मरण किया इसी कड़ी में आचार्य पद्मनंदि मुनिमहाराज भी अपने गुरु का स्मरण करते हुए कहते है कि रत्नत्रय रुप आभरण से विभूषित श्री वीरनंदी जी महाराज के द्वय चरण कमलों के स्मरण से उत्पन्न हुए प्रभाव को धारण करने वाले श्री पद्मनंदि महाराज है उसका तात्पर्य है कि पद्मनंदि महाराज के गुरु पंडित या ग्रहस्थ नहीं बल्कि रत्नत्रयधारी वीरनंदी मुनि थे। जिनके प्रति आचार्य पद्मनंदि महाराज की अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी। इसलिये उनके मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुये कि मेरे गुरु के चरण कमलों के स्मरण के प्रताप से जो कुछ भी मेरा द्वारा ललित वर्णो से लिखा गया है वह मेरे गुरु की महिमा है। अर्थात् आज मेरे अंदर जो योग्यता

Scanned with CamScanner

आई है वह सब गुरु के पुण्य प्रताप से, उनके चरणों की धूलि के प्रसाद से आई है। जिसमें ५२ पद्यों के द्वारा यह प्रकरण पूरा किया है।

बंधुओ ! इसमें कहे ५२ पद्य से यह प्रतीत होता है कि अंत की दो गाथायें अन्य महाराज के द्वारा बनाई गई होगी इसलिये उन्होंने ५२ पद्य कहे है। अथवा ५४ श्लोक ही पूज्य आचार्य महाराज द्वारा लिखे होंगे लेकिन ५२ श्लोकों में दान का उल्लेख किया गया है इसलिये ५२ श्लोक कहे गये है। इस प्रकार दान का प्रकरण समाप्त हुआ।

इसी भावना के साथ

महावीर भगवान की जय

स्थान - तलोद (गुज.)
दिनांक-२८-११-०९
वार-शनिवार

Scanned with CamScanner